सूची

गत एक घंटे ने शीतलता छिड़की है । अकस्मात् से इस कचरे के ढेर मे से एक सांत्वन की वस्तु प्राप्त हुई है ।...बस इस एक ही पुस्तक ने आज का सोमवार मीठा किया है ।

जनार्दनराय नागरः—इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र वसावड़ाजी के परिचित ससार मे रहनेवाली जीती जागती मूर्तियो की वर्षों संसर्गित प्रेरणाओं पर रचा गया है ।...वसावड़ाजी की यह प्रवृत्ति बहुत कुछ 'हार्डियन' 'सी मालूम होती है । अपने पात्रो को इतना सजीव और मूर्तिमान करने का सारा श्रेय लेखक की इस 'जेन अस्टिन' की-सी लालसा को है...

रानी जीजी लेखक के दिल का सारा सौंदर्य, सारी कोमलता, सारी करुणा और स्नेह की पूर्ति है । उसने हमें रुला दिया...रानी जीजी हमारी राय मे वसावड़ाजी की कोमल उदात्त समवेदना तथा उदार मानवता की प्रतिनिधि है—अतः कलम की भी । 'पानी पीकर आँचल से मुँह पूँछना' रानी जीजी के सारे अन्तर बाहर की कल्पना के लिये बस है ।

गल्प-गुच्छ

प्रथम भाग

मुर्दे की मौत

(१)

रानीहाट के ज़मीदार शारदाशङ्कर बाबू के घर की विधवा बहू के मायके मे कोई नही था। एक-एक करके सभी मर गये। सुसराल मे भी ठीक अपना कहलाने लायक़ कोई न था। न पति था और न पुत्र ही था। उसके जेठ शारदाशङ्कर का एक छोटा लड़का था। उसे वह बहू बहुत ही चा‍ थी। उस लड़के के पैदा होने के बाद उसकी मा बहुत ‍मी ने ‍तक बीमार रही। इस कारण उसकी विधवा चाची कादं‍ ने ही पाल-पोसकर उसे बड़ा किया। पराये लड़के को ‍घण्टे पोसकर बड़ा करने से उसके प्रति हृदय का स्नेह और ‍गये अधिक होता है, क्योंकि उसके ऊपर अधिकार नही ‍स

उसके ऊपर कोई सामाजिक दावा नहीं, केवल स्नेह का दाव होता है। किन्तु केवल स्नेह समाज के आगे अपना कोई दाव प्रमाणित नहीं कर सकता और वैसा करना भी नहीं चाहता। वह केवल अनिश्चित हृदय के सर्वस्व को दूनी व्याकुलता के साथ चाहने लगता है।

उस छोटे लड़के को अपने हृदय का सारा स्नेह देकर एक दिन सावन की रात को अकस्मात् कादम्बिनी की मृत्यु हो गई। एकाएक न जाने किस कारण से उसके हृदय की गति रुक गई—सारे जगत् के और सब काम बराबर चल रहे थे, केवल उसी स्नेह-पूर्ण हृदय की गति सदा के लिए बन्द हो गई।

पीछे पुलीस आकर उपद्रव न करे, इसलिए अधिक आड-म्बर न करके ज़मींदार के नौकर-चाकर ग़रीब ब्राह्मण शीघ्र ही उस मृत देह को मसान पर ले गये।

रानीहाट का मसान बस्ती से बहुत दूर पर था। तालाब किनारे एक झोपड़ी थी, उसके पास ही एक बड़ा सा मिल[illegible]ाद का पेड़ था। उस भारी जङ्गल मे और कुछ न था। [illegible] उस जगह पर नदी बहती थी। जिस समय का यह [illegible] लिखा जा रहा है उस समय वह नदी सूख गई थी। सूखी नदी के एक अंश को खोदकर इस समय मसान के [illegible]ालाब बनाया गया है। इस समय के लोग उस तालाब को एक पवित्र नदी के समान समझते थे।

मृत देह को झोपड़ी के भीतर रखकर चिता के लिए लकड़ी आने की प्रतीक्षा में चार आदमी बैठे रहे। उन्हें लकड़ी आने में इतनी देर जान पड़ने लगी कि उनमें से दो आदमी यह देखने के लिए चले कि लकड़ी आने में इतनी देर क्यों हुई। दो आदमी लाश के पास बैठे रहे।

सावन की अँधेरी रात थी। बादल घिरा हुआ था। आकाश में एक भी तारा नहीं देख पड़ता था। अन्धकार-पूर्ण झोपड़ी में दोनों आदमी चुपचाप बैठे हुए थे। एक आदमी की चादर में दियासलाई और मोमबत्ती बँधी हुई थी। बरसात की दियासलाई बहुत चेष्टा करने पर भी नहीं जली। साथ जो लालटैन आई थी वह भी बुझ गई थी।

बहुत देर तक चुप रहने के बाद एक ने कहा—अगर एक चिलम तमाखू साथ होती तो बहुत अच्छा होता, जल्दी के मारे कुछ साथ नहीं लाये।

दूसरे आदमी ने कहा—मैं दौड़ा जाकर चटपट सब सामान ला सकता हूँ।

उसके भागने के इरादे को समझकर दूसरे आदमी ने कहा—बाप रे! और मैं यहाँ अकेला बैठा रहूँगा!

फिर दोनों चुप हो रहे। एक-एक मिनट एक-एक घण्टे के बराबर जान पड़ने लगा। जो लोग लकड़ी लेने गये थे उनको ये लोग मन ही मन गालियाँ देने लगे। यह सन्देह इन लोगों के मन में धीरे-धीरे निश्चय का रूप धारण करने लगा

कि उक्त दोनो आदमी कहीं आराम से बैठे मज़े मे तमाखू पीते और गपशप लड़ाते होंगे।

कहीं कोई शब्द न था। केवल उस तालाब के समीप से उठ रहा लगातार मेढको और झींगुरो का शब्द सुनाई पड़ रहा था। इसी समय जान पड़ा कि लाश मानो हिली—मुर्दे ने मानों करवट बदली।

जो दो आदमी बैठे थे वे कांपते हुए भगवान् का नाम लेने लगे। एकाएक उस झोपड़ी मे एक लम्बी साँस सुन पड़ी। दोनो आदमी उसी दम झोपड़ी के भीतर से उछलकर बाहर निकले और सीधे गाँव की ओर भागे।

डेढ़ कोस के लगभग भागकर आने पर उन्होने देखा कि उनके दोनो साथी लालटैन हाथ मे लिये लौट आ रहे हैं। जो दोनों आदमी लकड़ियो के लिए कहकर गये थे वे सचमुच तमाखू पीने गये थे, लकड़ियो के लिए नहीं; तो भी उन्होने अपने दोनों साथियो से कह दिया कि लकड़ियों के कुन्दे चीरे जा रहे हैं—दूकानदार मजदूरो के हाथ अभी भेजता है। तब जो दो आदमी झोपड़ी मे मुर्दे को हिलते देख डरकर भाग खड़े हुए थे उन्होने अपने साथियो से मुर्दे के हिलने-डुलने और लम्बी साँस लेने का हाल कहा। जो लकड़ी लेने गये थे उन्होने अविश्वास करके उस बात को उड़ा दिया और अपने काम को छोड़कर मसान से भाग आने के लिए उन्हे डाँटने लगे।

सम्बन्ध नहीं है—मैं अत्यन्त भयानक, अकल्याण-रूप अपनी प्रेतात्मा हूँ !

यह बात मन मे आते ही उसे जान पड़ा कि उसके चारो ओर से विश्व के नियमों के सभी बन्धन मानों कट गये। मानों उसे अद्भुत शक्ति और असीम स्वाधीनता प्राप्त हो गई है। वह जो चाहे कर सकती है, जहाँ चाहे जा सकती है। इस अभूतपूर्व नवीन भाव के आविर्भाव से वह पागल की तरह होकर उस झोपडी से निकलकर उसी अन्धकार में चल दी। मन मे लज्जा, भय और चिन्ता का लेश भी नहीं रहा।

चलते चलते पैर थक गये, देह कमज़ोर होने लगी। किसी तरह वह भारी मैदान समाप्त ही नहीं होता। बीच-बीच से धान के खेत और पानी भरा हुआ मिलता था। जब थोड़ा-थोडा सबेरे का प्रकाश हुआ तब पास ही बस्ती के चिह्न देख पड़े और पक्षियों का शब्द सुन पड़ा।

तब उसे एक प्रकार का भय मालूम पड़ने लगा। वह यह कुछ भी नहीं जानती कि पृथ्वी के साथ, जीवित मनुष्यों के साथ, इस समय उसका कैसा सम्बन्ध है। जब तक वह मैदान मे थी, मसान मे थी, रात के अन्धकार में थी, तब तक मानों वह निर्भय थी—अपने राज्य मे थी। दिन के प्रकाश मे आदमियों की बस्ती उसे अत्यन्त भयङ्कर स्थान जान पडने लगी। मनुष्य भूत को डरता है, और भूत भी मनुष्य को डरता है—मृत्यु-नदी के दोनों किनारों पर दोनों रहते हैं।

कादम्बिनी के कपड़ो मे कीचड भरा हुआ था। अद्‌-भुत भाव के आवेश और रात के जागने से वह पागल सी हो रही थी। उसका चेहरा देखकर लोग सचमुच ही डर सकते थे। शायद गॉव के लडके उसे देखकर पागल समझकर दूर से ढेले भी मारते। किन्तु सौभाग्यवश सबसे पहले एक राह-चलते भले आदमी ने उसे इस अवस्था मे देखा।

उस भले आदमी ने पास आकर कादम्बिनी से कहा—आप किसी भले घर की बेटी-बहू जान पडती हैं; इस अवस्था मे इस तरह अकेले कहॉ जा रही हैं?

कादम्बिनी ने पहले कुछ उत्तर नही दिया, उसकी ओर ताकने लगी। एकाएक वह कुछ नही समझ सकी। वह संसार मे है, वह भले आदमी की बेटी-बहू जान पडती है, राहगीर उससे यह प्रश्न करता है, ये सब बातें उसे स्वप्न के समान मिथ्या जान पड़ने लगी।

पथिक ने फिर उससे कहा—चलो बेटी, मैं तुमको तुम्हारे घर पहुँचा दूँ। तुम्हारा घर कहॉ है?

कादम्बिनी सोचने लगी। ससुराल जाना तो हो नही सकता, और मायके मे कोई है ही नही। तब उसे अपने लड़कपन की सखी का स्मरण हुआ।

सखी योगमाया के साथ यद्यपि लडकपन से ही वह बिछुड चुकी है तथापि बीच-बीच मे वह कादम्बिनी को चिट्ठी

लिखती थी और कादम्बिनी भी उसे चिट्ठी लिखती थी। कभी-कभी चिट्ठी-पत्री के द्वारा प्रेम की लड़ाई भी हुआ करती थी। कादम्बिनी यह जताना चाहती थी कि वह योगमाया को बहुत चाहती है और योगमाया यह जताना चाहती थी कि वह कादम्बिनी को बहुत चाहती है। इसमे किसी को रत्ती भर भी सन्देह न था कि किसी मौक़े पर दोनों का मिलन होने पर कोई भी किसी को घड़ी भर के लिए आँख-ओट नहीं कर सकेगा।

कादम्बिनी ने उस भद्र पुरुष से कहा—निशिन्दापुर में श्रीपतिचरण बाबू के घर जाऊँगी।

वह पथिक कलकत्ते जा रहे थे। निशिन्दापुर यद्यपि निकट न था, तथापि उनकी राह मे ही पड़ता था। उस भले आदमी ने स्वयं प्रबन्ध करके कादम्बिनी को श्रीपतिचरण बाबू के घर पहुँचा दिया।

दोनों सखियाँ बहुत दिनो के बाद मिलीं। पहले पहचानने मे कुछ देर हुई, किन्तु थोड़ी ही देर मे दोनों ने दोनो को अच्छी तरह पहचान लिया।

योगमाया ने कहा—आज हमारे बड़े भाग्य हैं! तुम्हारे दर्शन पाने की तो मुझे कोई आशा ही न थी। लेकिन तुम यहाँ किस तरह आई? तुम्हारी सुसराल के लोगो ने क्या तुमको छोड़ दिया?

कादम्बिनी चुप रही; अन्त को कहा—बहन, सुसराल की कुछ बात तुम मुझसे न पूछो। मुझे दासी की तरह अपने यहाँ रहने दो, मैं तुम्हारा सब काम करूँगी।

योगमाया ने कहा—वाहजी, यह क्या बात है ! दासी की तरह क्यों रहोगी ! तुम मेरी सखी हो, तुम मेरी—इत्यादि ।

इसी समय श्रीपति बाबू घर मे आये । कादम्बिनी दमभर उनके चेहरे की ओर ताककर धीरे-धीरे वहाँ से दूसरी दालान मे चली गई । उसने न तो घूँघट काढ़ा और न किसी तरह के सङ्कोच या लज्जा का लक्षण दिखाया ।

कही उसकी सखी के विरुद्ध श्रीपति कुछ ख़याल न कर बैठें, इसलिए व्यस्त होकर योगमाया ने तरह-तरह से उन्हे समझाना शुरू किया । किन्तु इतना कम समझाना पडा और श्रीपति ने इतने सहज मे योगमाया की सब बातों को मान लिया कि उससे योगमाया अपने मन मे विशेष सन्तुष्ट नहीं हुई ।

कादम्बिनी सखी के घर तो आई, लेकिन उससे अच्छी तरह हिल-मिल नहो सकी, बीच मे मृत्यु का व्यवधान था । अपने सम्बन्ध मे सदा एक प्रकार का सन्देह और ख़याल रहने से दूसरे के साथ हिलना-मिलना असम्भव हो जाता है । कादम्बिनी योगमाया के मुँह की ओर ताकती है और न जाने क्या सोचती है—वह समझती है कि स्वामी और गृहस्थी को लेकर योगमाया मानो बहुत दूर पर दूसरे जगत् मे है । स्नेह, ममता और कर्त्तव्य से युक्त वह मानो पृथ्वी पर का जीव है । और कादम्बिनी मानों शून्य छाया है । योगमाया मानों अस्तित्व का देश है और कादम्बिनी मानो अनन्त में लीन है ।

योगमाया को भी कादम्बिनी का रहना न जाने कैसा लगा। वह ख़ुद भी उसे कुछ नहीं समझ सकी। स्त्रियों का स्वभाव होता है कि वे किसी बात का छिपाना नहीं सह सकतीं। क्योंकि अनिश्चित को लेकर कविता की जा सकती है, बहादुरी दिखलाई जा सकती है, पाण्डित्य प्रकट किया जा सकता है, किन्तु गृहस्थी नहीं की जा सकती। इसी लिए स्त्री जाति जिसे समझ नहीं पाती उसके अस्तित्व को लुप्त करके या तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती और या उसे अपने हाथ से नया रूप देकर अपने व्यवहार के योग्य वस्तु बना लेती है। यदि इन दो बातों मे से कोई बात नहीं कर सकती तो उसके ऊपर खीझ उठती है।

कादम्बिनी जितना ही योगमाया के लिए एक पहेली के समान दुर्बोध होने लगी उतना ही योगमाया की खीझ भी उसके ऊपर बढ़ने लगी। उसने सोचा, यह कौन बला मैंने अपने सिर पर ले ली।

इस पर एक और आफ़त यह थी कि कादम्बिनी आप ही अपने को डरती थी। वह अपने पास से आप ही मानो भागना चाहती है, पर भागकर जा नहीं सकती। जो भूत को डरते हैं उन्हे अपने पीछे भय जान पड़ता है—जहाँ दृष्टि नहीं पहुँचती वहीं भय होता है। किन्तु, कादम्बिनी मानों अपने को ही डरती थी, बाहर से उसे कुछ भय न था।

इसी कारण कभी-कभी दोपहर को सूनी कोठरी में पड़े-पड़े वह चिल्ला उठती थी और शाम को दीपक के प्रकाश में अपनी परछाहीं देखकर उसके रोंगटे खड़े हो आते थे।

उसके इस भय को देखकर घर के लोगों के मन में भी एक प्रकार का भय उत्पन्न हो गया था। नौकर-चाकर और योगमाया को भी जहाँ-तहाँ भूत देख पड़ने लगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि कादम्बिनी आधी रात को अपनी कोठरी से उठकर रोती हुई एकदम योगमाया के कमरे के द्वार पर आकर उपस्थित हुई और बोली—बहन, बहन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अकेले मुझसे रहा नहीं जाता।

योगमाया को जैसे डर लगा वैसे ही क्रोध भी चढ़ आया। इच्छा हुई कि उसी घड़ी कादम्बिनी को अपने घर से निकाल दे। किन्तु दयालु श्रीपति ने बहुत समझा-बुझाकर उसे ठण्ढा किया और अपने कमरे के पास की कोठरी में कादम्बिनी के रहने का प्रबन्ध कर दिया।

दूसरे दिन असमय में ही श्रीपति का भीतर बुलौआ हुआ। योगमाया ने अकस्मात् उन्हें बकना शुरू कर दिया। कहा—तुम कैसे आदमी हो! एक औरत अपनी ससुराल से निकलकर तुम्हारे घर में आकर रही है, महीने भर से अधिक हुआ, मगर तब भी वह जाने का नाम नहीं लेती और तुम उसमें ज़रा भी आपत्ति नहीं करते। तुम्हारे मन में क्या है? मर्द लोग ऐसे ही होते हैं।

सचमुच साधारण स्त्री जाति के ऊपर मर्दों का एक प्रकार का बिना विचार का पक्षपात होता है और उसके लिए स्त्रियाँ ही उन्हें अधिक अपराधी प्रमाणित करती हैं। सहायहीन अथच सुन्दरी कादम्बिनी के प्रति श्रीपति की दया उचित मात्रा से कुछ अधिक थी; इसके विरुद्ध वे योगमाया के सिर पर हाथ रखकर क़सम खाने के लिए तैयार थे। तथापि उनके व्यवहार से उनके कहने का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता था।

श्रीपति समझते थे कि सुसराल के लोग अवश्य ही इस पुत्रहीन अबला के ऊपर किसी तरह का अत्याचार करते थे। उस अत्याचार को न सह सकने के कारण ही कादम्बिनी ने मेरे घर में आकर आश्रय लिया है। इसके माँ-बाप कोई नहीं है। तब मैं भी इसे किस तरह त्याग दूँ! इसी कारण अब तक उन्होंने कादम्बिनी की सुसराल में न तो ख़बर भेजी और न कुछ पता लगाया। कादम्बिनी से भी यह अप्रीतिकर प्रश्न करके उसे व्यथा पहुँचाने के लिए उनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी।

इसी समय उनकी स्त्री अनेक प्रकार से चोट पहुँचाकर उनकी कर्त्तव्य-बुद्धि को सजग करने की चेष्टा करने लगी।

श्रीपति इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि अपने घर की शान्ति बनाये रखने के लिए कादम्बिनी की सुसराल में ख़बर देना परम आवश्यक है। अन्त को उन्होंने स्थिर किया कि एकाएक चिट्ठी लिखने से उसका अच्छा फल नहीं भी हो

सकता है। अतएव रानीहाट में खुद जाकर अनुसन्धान करके कर्त्तव्य निश्चित करना ठीक होगा।

उधर श्रीपति रानीहाट गये और इधर योगमाया ने आकर कादम्बिनी से कहा—सखी, अब यहाँ तुम्हारा रहना अच्छा नहीं। लोग क्या कहेंगे!

कादम्बिनी ने गम्भीर भाव से योगमाया की ओर देखकर कहा—लोगों के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है?

यह उत्तर सुनकर योगमाया सन्नाटे में आ गई। कुछ खीझकर उसने कहा—तुम्हारा सम्बन्ध न हो, लेकिन हमारा तो है। हम पराये घर की बहू-बेटी को किस तरह क्या कहकर अपने घर मे रख सकती हैं?

कादम्बिनी ने कहा—मेरी सुसराल अब कहाँ है?

योगमाया ने कहा—बाप रे! तू कहती क्या है?

कादम्बिनी ने धीरे-धीरे कहा—मैं क्या तुम लोगों की कोई हूँ? मैं क्या इस पृथ्वी पर का जीव हूँ? तुम लोग हँसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, सब अपने-अपने लोगों के साथ सुख-दुःख भोगते हो, और मैं केवल तुम लोगों को ताकती रहती हूँ। तुम मनुष्य हो और मैं छाया हूँ! कुछ मेरी समझ में नहीं आता कि भगवान् ने मुझे तुम्हारे इस संसार के बीच में क्यों रक्खा है।

इस तरह योगमाया की ओर देखकर कादम्बिनी ने ये बातें कहीं कि योगमाया ने और ही कुछ समझा। किन्तु

असल बात उसकी समझ मे नहीं आई। वह जवाब भी नहीं दे सकी और दुबारा कुछ प्रश्न भी नहीं कर सकी। मुँह फुलाकर गम्भीर भाव से वहाँ से चली गई।

(४)

रात के दस बजे होगे जब श्रीपति रानीहाट से लौट आये। उस समय मूसलधार पानी बरस रहा था। वर्षा के अविराम शब्द से जान पड़ता था कि न वर्षा का अन्त होगा और न रात समाप्त होगी।

योगमाया ने पूछा—क्या हुआ?

श्रीपति ने कहा—बहुत सी बातें हैं। पीछे कहूँगा।

अब उन्होंने कपड़े उतारे, भोजन किया। फिर लेटकर तमाखू पीने लगे। उनके चेहरे पर अत्यंत चिन्ता का भाव झलक रहा था।

योगमाया बहुत देर से अपने कौतूहल को दबाये हुए थी। पति के पास आते ही उसने पूछा—कहो, क्या सुना?

श्रीपति ने कहा—तुमने ज़रूर भूल की है।

सुनकर योगमाया अपने मन मे खीझ उठी। औरतें कभी भूल नहीं करतीं। और अगर भूल करे भी तो किसी बुद्धिमान् पुरुष को उसका उल्लेख कभी नहीं करना चाहिए। उस भूल को अपने सिर पर ले लेना ही युक्ति-सङ्गत है।

योगमाया ने कुछ गर्म होकर कहा—कैसी भूल! ज़रा मैं भी तो सुनूँ।

श्रीपति ने कहा—जिस स्त्री को तुमने अपने घर मे रक्खा है वह तुम्हारी सखी कादम्बिनी नहीं है।

ऐसी बात सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है। ख़ासकर अपने पति के मुँह से सुनकर किस स्त्री को बुरा न लगेगा? योगमाया ने कहा—क्या ख़ूब, मैं अपनी सखी को नहीं पहचानती, तुम्हारे पहचनवाने से पहचानूँगी!

श्रीपति ने समझाया कि मैं यह नहीं कहता कि तुम अपनी सखी को नहीं पहचानती, मैं पहचानता हूँ। प्रमाण पर तो विश्वास करना ही होगा। तुम्हारी सखी कादम्बिनी मर चुकी है, इसमे कोई सन्देह नहीं।

योगमाया ने कहा—ज़रा इनकी बातें तो सुनो। तुम ज़रूर ग़लती कर आये हो। जहाँ जाना था वहाँ न जाकर और कहीं गये हो और यह ग़प सुन आये हो। तुमसे ख़ुद जाने के लिए किसने कहा था। एक चिट्ठी लिखकर भेज देने से ही तो सब मामला साफ़ हो जाता।

अपनी कार्य-कुशलता पर स्त्री के इस अविश्वास से अत्यन्त उदास होकर श्रीपति बाबू विस्तृत रूप से सगृहीत प्रमाणो का प्रयोग करने लगे—किन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। दोनो ओर से हाँ, ना, होते होते आधी रात बीत गई।

यद्यपि कादम्बिनी को उसी घडी घर से निकाल देने के बारे मे स्वामी और स्त्री दोनों का मत मिलता था—क्योंकि श्रीपति का विश्वास था कि वह स्त्री कादम्बिनी बनकर यहाँ

रहती है और उसने योगमाया को धोखा दिया है; और योग-माया का विश्वास था कि कादम्बिनी कुपथगामिनी होकर घर से निकल आई है—तथापि उपस्थित तर्क के सम्बन्ध मे कोई भी हार न मानता था। श्रीपति कहते थे, वह कादम्बिनी नहीं है और योगमाया कहती थी कि वह कादम्बिनी ही है।

दोनों की आवाज़ धीरे-धीरे ऊँची हो चली। उन्हें यह बात भूल गई कि पास ही की कोठरी मे कादम्बिनी सो रही है।

श्रीपति ने कहा—बड़ी मुशकिल है, मैं ख़ुद सुन आया हूँ कि कादम्बिनी मर चुकी है।

योगमाया ने कहा—मैं कैसे मानूँ ? मेरी आँखों के आगे वह तो जीती-जागती मौजूद है।

अन्त को योगमाया ने पूछा—अच्छा कादम्बिनी कब मरी थी ?

उसने सोचा कि कादम्बिनी की किसी चिट्ठी की तारीख़ के साथ उसके मरने की तारीख़ का अनैक्य दिखाकर मैं पति के भ्रम को प्रमाणित कर दूँगी।

श्रीपति ने कादम्बिनी के मरने की जो तारीख़ बतलाई उससे हिसाब करके दोनो ने देखा कि जिस दिन शाम को कादम्बिनी उनके घर आई थी उसके ठीक एक दिन पहले उसके मरने की तारीख़ थी ! सुनते ही योगमाया का कलेजा धक से हो उठा, श्रीपति के भी रोंगटे खड़े हो आये।

इसी समय योगमाया के कमरे का दर्वाज़ा खुल गया, हवा के एक झोंके से भीतर का चिराग़ बुझ गया। कमरे भर

में अन्धकार छा गया। कादम्बिनी एकदम कमरे के भीतर आकर खडो हो गई। उस समय ढाई पहर के लगभग रात बीती होगी। बाहर ज़ोर से पानी पड़ रहा था।

कादम्बिनी ने कहा—बहन, मैं तुम्हारी सखो कादम्बिनी ही हूँ, किन्तु अब मैं ज़िन्दा नहीं, मर चुकी हूँ।

योगमाया डर के मारे चिल्ला उठो—श्रीपति के मुँह से कोई बात नही निकली।

कादम्बिनी फिर कहने लगी—किन्तु मरने के सिवा मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है। मुझे अगर इस लोक मे भी जगह नहो है और परलोक में भी स्थान नही है तो बतलाओ मैं कहाँ जाऊँ ?

तीव्र कण्ठ से चिल्लाकर बरसात की रात मे सोते हुए विधाता को मानो जगाकर कादम्बिनी ने कहा—तो बतलाओ, मैं कहा जाऊँ ?

इतना कहकर, मूर्च्छित स्त्री-पुरुष को उसी अँधेरे घर में छोडकर, इस विश्व में कादम्बिनी अपने लिए स्थान खोजने चल दी।

(५)

यह बतलाना कठिन है कि कादम्बिनी किस तरह रानीहाट को लौट गई। वह रानीहाट मे पहुँचकर दिन भर भूखी-प्यासी गाँव के निकटवर्ती एक टूटे-फूटे मूर्त्तिहीन मन्दिर मे छिपी बैठी रही।

बरसात की अकाल-सन्ध्या जब अत्यन्त घनी हो आई और निकटवर्ती दुर्योग की आशङ्का से जब गाँव के लोग अपने-अपने घर में किवाड़े बन्द करके बैठ रहे तब कादम्बिनी उस मन्दिर से निकली। सुसराल के द्वार पर पहुँचते ही एक बार उसका हृदय धड़क उठा, किन्तु लम्बा घूँघट काढ़कर जब वह भीतर घुसी तब गाँव की कोई स्त्री समझकर द्वार पर किसी ने उससे कुछ नहीं पूछा। इसी समय पानी और भी ज़ोर से पड़ने लगा और हवा भी ख़ूब ज़ोर से चलने लगी।

उस समय घर की मालकिन, शारदाशङ्कर की स्त्री, अपनी विधवा ननद के साथ चौपड़ खेल रही थी। दासी और रोटी बनानेवाली महराजिन रसोईवाले घर मे थीं। बीमार बच्चा ज्वर उतर जाने पर पड़ा हुआ सो रहा था। कादम्बिनी सबकी नज़र बचाकर उस बच्चे के पास पहुँची। मालूम नहीं, वह क्या सोचकर सुसराल आई थी। वह भी शायद इस बात को न जानती थी। शायद एक बार अपने हाथ के पले बच्चे को देखने की इच्छा ही उसे घसीट लाई थी। उसके बाद कहाँ जाना होगा, क्या करना होगा, इस पर उसने कुछ भी विचार नहीं किया था।

दीपक के प्रकाश मे उसने देखा, रोगी दुर्बल बच्चा पड़ा सो रहा है। देखकर कादम्बिनी का उत्तप्त हृदय मानों प्यासा हो उठा। उसे एक बार उठाकर छाती से लगाये और प्यार किये बिना कादम्बिनी से नहीं रहा गया। उसके बाद काद-

म्बिनी ने सोचा, मैं नहीं हूँ, इस बच्चे को देखनेवाला—इसकी ख़ैर-ख़बर लेनेवाला और कौन है। इसकी मा खेल-तमाशे और बातचीत के आगे और कुछ नहीं देखती। यह बच्चा मुझे सौंपकर वह इसकी ओर से बिलकुल निश्चिन्त थी। मैंने ही पाल-पोसकर इसे इतना बडा किया है। अब कौन इसका ताक लेगा ?

इसी समय एकाएक करवट बदलकर, अर्धनिद्रित अवस्था मे, वह बालक कह उठा—चाचो, पानी दे। कादम्बिनी अपने मन मे कहने लगी—मेरा बच्चा अभी तक मुझको नहीं भूला। कादम्बिनी ने जल्दी से गिलास में सुराही से पानी उड़ेला और बच्चे को गोद मे लेकर पानी पिलाया।

जब तक नींद की ख़ुमारी थी तब तक तो सदा के अभ्यास के अनुसार चाची के हाथ से पानी पीने मे बच्चे को कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। अन्त को कादम्बिनी ने जब उसे फिर सुला दिया तब उसकी नींद खुल गई। वह चाची से लिपटकर बोला—चाची, तू मर गई थी ?

चाची ने कहा—हाँ बच्चा।

बच्चे ने कहा—अब तू फिर आ गई है ? अब तो तू न मर जायगी ?

इसका उत्तर देने के पहले ही भारी गोलमाल मच गया। दासी सागूदाना बनाकर बालक को देने आई। एकाएक सागूदाना फेककर "दैया रे !" कहकर वह गिर पड़ी।

उसकी चिल्लाहट सुनकर घर की मालकिन चौपड़ फेंक-कर वहाँ दौड़ आईं। वहाँ का दृश्य देखकर वे एकदम काठ के ठूँठ की तरह खड़ी रह गईं। न तो वे भाग सकीं और न कुछ कह सकीं!

यह सब देखकर बच्चा भी डर गया। उसने रोकर कहा—चाची, तू जा।

कादम्बिनी को बहुत दिनों के बाद यह अनुभव हुआ कि वह मरी नहीं है। वही पुराना घर-द्वार है। वही सब है, वही बच्चा है, वही स्नेह है। उसके लिए सब कुछ सजीव है। उसके और इन सब चीज़ों के बीच में कोई बाधा और अन्तर नहीं है। सखी के घर जाकर उसने यह अनुभव किया था कि वह मर गई है। बच्चे के घर आकर उसने देखा और समझा कि वह मरी नहीं, ज़िन्दा है।

व्याकुल होकर कादम्बिनी ने अपनी जेठानी से कहा—जीजी, मुझे देखकर तुम क्यों डर रही हो! मैं तो वही जीती-जागती हूँ।

शारदाशङ्कर की स्त्री खड़ी नहीं रह सकीं। मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

बहन से ख़बर पाकर शारदाशङ्कर बाबू ख़ुद घर के भीतर आकर उपस्थित हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर कादम्बिनी से कहा—बहू, क्या तुमको यही चाहिए? यह बच्चा ही हमारे वंश में है। इस पर तुम्हारी दृष्टि क्यों है? हम क्या

तुम्हारे कोई ग़ैर हैं ? तुम्हारे मरने के बाद से वह दिन-दिन सूखा जा रहा है, उसकी बीमारी नही छूटती। वह दिन-रात चाची-चाची किया करता है। जब तुम संसार से चली गईं तब यह माया-ममता छोड़ देना ही तुमको उचित है। हम तुम्हारी गया करा देंगे।

अब कादम्बिनी से रहा नही गया। उसने तीव्र स्वर से कहा—मैं मरी नहीं हूँ; जीती जागती हूँ। मैं तुमको किस तरह समझाऊँ कि मैं मरी नही हूँ। यह देखो—

इतना कहकर उसने लोटा उठाकर सिर मे मारा। सिर फट गया और रुधिर बहने लगा।

फिर उसने कहा—देखो, मैं जीती-जागती हूँ।

शारदाशङ्कर काठ के पुतले की तरह खडे रहे। बच्चा डर के मारे दादा-दादा कहकर बाप को पुकारने लगा। दोनो बेहोश औरते ज़मीन पर पड़ी हुई थी।

होश आने पर कादम्बिनी "मैं मरी नही, मैं मरी नहीं" कहकर चिल्लाती हुई घर से बाहर निकली और बाहर के तालाब मे जाकर कूद पड़ी। शारदाशङ्कर को भीतर से उसके गिरने का धमाका सुन पड़ा।

रात भर पानी बरसता रहा। उसके दूसरे दिन भी पानी का बरसना बन्द नहीं हुआ। इस प्रकार मरी हुई कादम्बिनी ने फिर मरकर यह प्रमाणित कर दिया कि वह मरी नहीं थी।

सुधा

कान्तिचन्द्र की अवस्था थोड़ी है, तथापि स्त्री के मरने के उपरान्त द्वितीय स्त्री का अनुसन्धान न करके पशु-पक्षियों के शिकार मे ही उन्होंने अपना मन लगाया। उनका शरीर लम्बा, पतला, दृढ़ और हलका था। दृष्टि तीक्ष्ण थी। निशाना कभी चूकता न था। बङ्गाली होने पर भी उनका पहनावा युक्त-प्रान्त के लोगों का सा था। उनके साथ पहलवान हीरासिंह, छक्कनलाल और गाने-बजानेवाले उस्ताद ख़ाँ साहब, मियाँ साहब आदि अनेक लोग रहते हैं। बेकार मुसाहबों की भी कमी नहीं है।

दो-चार शिकारी बन्धु-बान्धवों को लेकर अगहन के महीने मे कान्तिचन्द्र नैदीघी की नदी के किनारे शिकार करने के लिए गये। नदी के बीच दो बड़ी नावो मे उनका निवास हुआ। और भी दो-चार नावे उनके साथ थीं। उनमे नौकर-चाकरों और मुसाहबों का डेरा था। गाँव की बहू-बेटियों का पानी भरना और नहाना-धोना एक प्रकार से बन्द सा हो गया। दिन भर बन्दूक़ की आवाज़ से जल-स्थल काँपा करता था और शाम को उस्तादों की तान से गाँव के लोगों की नींद हराम हो रही थी।

एक दिन सबेरे कान्तिचन्द्र अपने बजरे मे बैठे अपने हाथ से बन्दूक़ का चोंगा साफ़ कर रहे थे। इसी समय पास ही बत्तख़ की आवाज़ सुनकर आँख उठाकर उन्होने देखा, एक बालिका दोनों हाथो से दो बत्तख़ों को छाती से लगाये हुए घाट पर लिये खड़ी है। नदी छोटी थी, उसमे प्रवाह माना था ही नही। जगह-जगह पर तरह-तरह की सेवार फैली हुई थी। वह लड़की दोनो बत्तख़ो को पानी मे छोडकर, एकदम वे हाथ से निकलकर दूर न चले जायँ, इस प्रकार के त्रस्त सतर्क स्नेह के भाव से उन्हे पास ही रखने की चेष्टा करने लगी। जान पड़ा कि और दिन वह अपनी बत्तख़ो को पानी मे छोडकर चली जाती थी, किन्तु इन दिनों शिकारियों के डर से निश्चिन्त भाव से उन्हे छोड़कर नही जा सकती।

उस लड़की का सौन्दर्य बिल्कुल ही नये ढङ्ग का था—मानों विश्वकर्मा ने उसे अभी गढ़कर जान डाल दी है। उसकी अवस्था का निर्णय करना कठिन है। शरीर मे जवानी के चिह्न प्रकट हो आये हैं, किन्तु उसका मुख ऐसा भोला है कि संसार के रङ्ग-ढङ्ग ने मानों उसे अभी बिल्कुल स्पर्श ही नहीं किया। जवानी के आने की ख़बर मानो उसको अभी तक नही मिली।

दमभर के लिए कान्तिचन्द्र मानो बन्दूक़ की नली साफ़ करना भूल गये। मानों वे कोई स्वप्न देखने लगे। ऐसी जगह पर ऐसा चेहरा देखने की उन्हे स्वप्न में भी आशा नही थी। तथापि किसी राजा के अन्त:पुर की अपेक्षा उसी

जगह वह चेहरा भला लगता था। सोने की फूलदानी की अपेक्षा पेड़ में ही फूल की अधिक शोभा होती है। उस दिन शरद ऋतु की ओस की बूँदों से और सवेरे की धूप से नदी-तट पर का विकसित कासवन बहुत ही सुन्दर देख पड़ रहा था। उसी के बीच वह भोला-भाला सुन्दर मुख देखकर कान्तिचन्द्र मुग्ध हो गये।

इसी समय एकाएक वह लड़की डरकर, रुआसा मुँह बनाकर, जल्दी से दोनो बत्तखों को गोद में लेकर अव्यक्त आर्त्त शब्द करती हुई घाट से चल दी। कान्तिचन्द्र ने उसके कारण का पता लगाने के लिए बजरे के बाहर आकर देखा, उनका एक रसिक मुसाहब केवल कौतुक के लिए--बालिका को डराने के लिए--उन बत्तखों की ओर बन्दूक़ तान रहा है। कान्तिचन्द्र ने पीछे से बन्दूक़ छीनकर एकाएक उसके गाल में एक थप्पड़ लगा दिया। अकस्मात् रङ्ग में भङ्ग देखकर वह मुसाहब वहाँ से टल गया। कान्तिचन्द्र फिर बजरे के भीतर जाकर बन्दूक़ साफ़ करने लगे।

थोड़ी देर में कान्तिचन्द्र ने एक कबूतर को गोली मारी। गोली खाकर कबूतर कुछ दूर पर गिर पड़ा। शिकार का पता लगाने के लिए कान्तिचन्द्र उस दस-पाँच घर के छोटे से गाँव में गये। उन्हे अधिक परिश्रम नही करना पड़ा। उन्होंने देखा, एक घर के द्वार पर पीपल के पेड़ के नीचे वही लड़की बैठी हुई है और उसकी गोद में वही घायल कबूतर है। वह

लड़की फूल-फूलकर रोती हुई स्नेह से उस कबूतर के ऊपर हाथ फेर रही है और पास ही के एक पेड के थाले से आँचल भिगोकर प्यासे कबूतर के मुँह मे पानी निचोड रही है। पालतू बिल्ली दोनो पैर फैलाये कबूतर की ओर लुब्ध दृष्टि से देख रही है। किन्तु वह बालिका उँगली दिखाकर उसके बढ़े हुए आग्रह को बार-बार दमन कर देती है।

गाँव के भीतर दोपहर के सन्नाटे मे यह करुण-चित्र देखते ही कान्तिचन्द्र के हृदय मे अङ्कित हो गया। पेड़ के पत्तो के भीतर से छाया और धूप आकर उस बालिका के ऊपर पड़ रही थी। उसके पास ही एक परिपुष्ट गऊ भोजन के उपरान्त बैठी हुई पागुर कर रही थी और सींग-पूँछ हिला-हिलाकर मक्खियाँ हाकती जाती थी। पास ही हवा से हिल रही बाँस की पत्तियों का शब्द सुन पड़ रहा था। सवेरे नदी-तट पर जो बालिका वन-लक्ष्मी की तरह देख पड़ी थी वह यहाँ दोपहर को स्नेह-पूर्ण गृह-लक्ष्मी के समान देख पड़ी।

कान्तिचन्द्र बन्दूक हाथ मे लिये एकाएक उस बालिका के आगे आकर बहुत ही सङ्कुचित हो पड़े। मानों चोरी के माल सहित चोर पकड़ लिया गया। उनकी इच्छा हुई कि किसी तरह वे प्रमाणित करे कि कबूतर मेरी गोली से घायल नहीं हुआ। किस तरह इस बात की चर्चा चलावे, कान्तिचन्द्र यही सोच रहे थे। इसी समय घर के भीतर से किसी ने पुकारा—'सुधा! बालिका जैसे चौक उठी। फिर किसी ने पुकारा—

सुधा ! तब वह बालिका जल्दी से कबूतर को लेकर घर के भीतर चली गई। कान्तिचन्द्र ने अपने मन मे कहा—नाम तो बहुत ही ठीक है। सुधा !

कान्तिचन्द्र तब नाव पर आकर बन्दूक रखकर उसी घर के सदर दरवाज़े पर फिर उपस्थित हुए। देखा, एक सिर मुँड़ाये हुए शान्तमूर्ति ब्राह्मण चबूतरे पर बैठे भक्तमाल पढ़ रहे हैं। कान्तिचन्द्र ने उन ब्राह्मण के भक्ति-मण्डित मुख के गम्भीर स्निग्ध शान्त भाव के साथ उस बालिका के दयार्द्र मुख के सादृश्य का अनुभव किया।

कान्तिचन्द्र ने ब्राह्मण को नमस्कार करके कहा—प्यास लगी है महाशय, क्या लोटा भर जल मिल सकता है ? ब्राह्मण ने सादर उनको बिठलाया और भीतर से कुछ बताशे और लोटे भर पानी लेकर अतिथि के सामने रख दिया।

कान्तिचन्द्र के जल पी चुकने के बाद ब्राह्मण ने उनका परिचय पाने की इच्छा प्रकट की। कान्तिचन्द्र ने अपना परिचय देकर कहा—महाशय, अगर मैं आपका कुछ उपकार कर सकता तो अपने को कृतार्थ समझता।

उन ब्राह्मण का नाम नवीनचन्द्र बनर्जी था। उन्होंने कहा—बेटा, तुम मेरा क्या उपकार करोगे ? एक सुधा नाम की मेरे लड़की है, उसे किसी अच्छे लड़के को सौंपना ही मेरे लिए एक कार्य रह गया है। पास के स्थानों मे कहीं कोई अच्छा सुशील सुपात्र कुलीन लड़का नहीं देख पड़ता, दूर जाकर

पता लगाने की सामर्थ्य नहीं। घर मे भगवान् की मूर्ति है, उसे छोड़कर कहीं जाना नहीं हो सकता।

कान्तिचन्द्र ने कहा—नाव पर आप मुझसे अगर मिल सकें तो मैं एक कुलीन अच्छा लडका बतला सकता हूँ।

इधर कान्तिचन्द्र के भेजे दूतों ने नवीनचन्द्र बनर्जी की कन्या सुधा के बारे में गॉव मे जिससे पूछा उसी ने कन्या के स्वभाव की बड़ा बडाई की।

दूसरे दिन नवीनचन्द्र जब नाव पर आये तब कान्तिचन्द्र ने उनको प्रणाम करके बिठलाया और बातो ही बातों में यह जताया कि वे उनकी कन्या से व्याह करना चाहते हैं। ब्राह्मण इस अचिन्तित असम्भव सौभाग्य की बात सुनकर बहुत विस्मित हुए। उन्हे जान पड़ा, कान्तिचन्द्र को कुछ भ्रम हो गया है। उन्होंने फिर कहा—तुम मेरी कन्या के साथ व्याह करोगे?

कान्तिचन्द्र—अगर आपकी सम्मति हो तो मैं तैयार हूँ।

नवीनचन्द्र ने फिर पूछा—सुधा के साथ?

उत्तर मिला—हॉ।

नवीनचन्द्र ने स्थिर भाव से प्रश्न किया—तुमने उसको अभी देखा-सुना भी नहीं है—

कान्तिचन्द्र ने जैसे उसे सचमुच ही नही देखा, ऐसा ढङ्ग करके कहा—इसके लिए आप कुछ चिन्ता न करे।

नवीन ने गद्गद होकर कहा—मेरी सुधा बहुत ही सुशील लडकी है, घर-गृहस्थी के काम करने मे अद्वितीय है। तुम

जैसे बिना देखे ही उसे व्याहने के लिए तैयार हो वैसे ही मैं भी आशीर्वाद देता हूँ कि मेरी सुधा सदा तुम्हारे मन के माफ़िक रहकर तुमको सुखी करे।

माघ के महीने में ब्याह होना पक्का हो गया।

गाँव के रईस मजूमदार बाबू के पुराने घर मे व्याह का स्थान निर्दिष्ट हुआ। यथासमय पालकी पर चढकर रोशनी और बाजे-गाजे के साथ वर आकर उपस्थित हुआ।

विवाह के समय एक वार, माँग मे सेंदुर लगाने के अवसर पर, वर ने कन्या की ओर देखा। सिर झुकाये लज्जा-शीला सुधा को कान्तिचन्द्र अच्छी तरह नहीं देख सके। आनन्द के मारे आँखों में चकाचौंध सी लग गई।

कुलरीति के अनुसार वर को घर के भीतर मुँह जुठालने के लिए जाना पड़ा। वहाँ एक स्त्री ने ज़बर्दस्ती वर के द्वारा कन्या का घूँघट खुलवाया। घूँघट खोलते ही कान्तिचन्द्र मानों चौंक पड़े।

यह तो वह लडकी नहीं है! एकाएक मानों उनके सिर पर वज्र गिर पड़ा। दमभर मे मानों वहाँ की सब रोशनी बुझ गई और उस अन्धकार की बढ़िया ने मानों नव-वधू के मुख को भी अन्धकारमय बना दिया।

कान्तिचन्द्र ने अपने मन मे दुबारा ब्याह न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। भाग्य ने उस प्रतिज्ञा को इस तरह की दिल्लगी करके चुटकी बजाते-बजाते नष्ट कर दिया। कितने ही अच्छे-

अच्छे व्याह आये, और उनको कान्तिचन्द्र ने नामञ्जूर कर दिया। ऊँचे घराने के सम्बन्ध का ख़याल, धन का प्रलोभन और रूप का मोह कान्तिचन्द्र को नहीं डिगा सका, किन्तु अन्त को एक अपरिचित गॉव मे एक अज्ञात दरिद्र के घर ऐसी विडम्बना सहनी पड़ी। लोगो को मुँह किस तरह दिखावेगे ?

पहले ससुर के ऊपर क्रोध हुआ। ठग ने एक लड़की दिखाकर दूसरी लडकी मुझे व्याह दी। किन्तु फिर उन्होने सोचा कि नवीनचन्द्र ने तो लडकी दिखाई नही। वह तो व्याह के पहले लडकी दिखाने के लिए राज़ी थे, किन्तु कान्तिचन्द्र ने ख़ुद ही नाही कर दी। अपनी बुद्धि के दोष को किसी के आगे प्रकट न करना ही कान्तिचन्द्र ने अच्छा समझा।

वे दवा की तरह उस वात को पी गये, किन्तु उनके मुख का भाव बिगड गया। सुसराल की औरतो का मसख़रापन उन्हे बुरा मालूम पडने लगा। अपने और सर्वसाधारण के ऊपर उन्हे बडा क्रोध हो आया।

इसी समय कान्तिचन्द्र के पास वैठी हुई नव वधू एकाएक अव्यक्त भय का शब्द करके चौंक पडी। सहसा उसके पास से एक खरगोश का वच्चा दौड़ता हुआ निकल गया। उसी दम उस दिन की वही लड़की खरगोश के वच्चे के पीछे दौड़ती हुई आई। ख़रगोश के वच्चे को पकड़कर उसके गाल पर गाल रखकर उसे वह दुलराने लगी। "वह पगली आ गई" यह कहकर सव औरतें इशारे से, वहॉ से चले जाने के लिए, उससे

कहने लगीं। किन्तु उधर कुछ ध्यान न देकर वर और कन्या के सामने बैठकर बच्चों की तरह कौतूहल के साथ, क्या हो रहा है, यह वह देखने लगी। एक स्त्री उसे ज़बर्दस्ती पकड़-कर वहाँ से हटाने की चेष्टा करने लगी। कान्तिचन्द्र ने कहा—क्यों, उसे बैठी रहने दो। इसके बाद उस लड़की से कान्ति-चन्द्र ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

वह लड़की कुछ उत्तर न देकर वर की ओर ताकने लगी। जितनी औरतें वहाँ बैठी थीं, सब हँसने लगीं।

कान्तिचन्द्र ने फिर पूछा—तुम्हारी बत्तखें अच्छी हैं ?

कुछ उत्तर न देकर, बिना किसी सङ्कोच के, उसी तरह वह लडकी कान्तिचन्द्र के मुँह की ओर ताकती रही।

कान्तिचन्द्र ने साहस करके फिर पूछा—तुम्हारा वह कबूतर अच्छा हो गया। फिर भी कुछ उत्तर न मिला। सब औरतें इस तरह हँसने लगीं जैसे वर को बड़ा भारी धोखा हुआ।

अन्त को पूछने पर कान्तिचन्द्र को मालूम हुआ कि वह लडकी गूँगी और बहरी है। गाव के सब पशु-पक्षी ही उसके साथी हैं। उस दिन सुधा की पुकार सुनकर जो वह घर के भीतर गई थी सो उसका केवल अनुमानमात्र था।

यह सुनकर कान्तिचन्द्र अपने मन मे चौंक पड़े। जिसको न पाकर वे पृथ्वी को सुख से शून्य समझने लगे थे, भाग्य-वश उसी के हाथ से छुटकारा पाकर उन्होंने अपने को धन्य समझा। कान्तिचन्द्र ने अपने मन में कहा—अगर मैं इसी

लड़की के बाप के पास पहुँचता और वह मेरी प्रार्थना के अनु-सार कन्या को किसी तरह मेरे गले मढ़कर छुटकारा पाने की चेष्टा करता तो !

जब तक अपने हाथ से निकल गई उस लड़की का मोह उनके मन मे हलचल डाले हुए था तब तक वे अपनी स्त्री के सम्बन्ध मे बिलकुल अन्ध हो रहे थे। पास ही और कोई सान्त्वना का कारण है या नहीं, यह देखने की प्रवृत्ति भी उन्हे नहीं थी। किन्तु ज्योंही उन्होने उस लड़की के गूँगे और बहरे होने की बात सुनी त्योंही उनकी दृष्टि के सामने मानों जगत् के ऊपर से एक काला पर्दा हट गया। कान्ति-चन्द्र ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद देकर एक बार सुयोग पाकर अपनी स्त्री की ओर देखा। उस समय उन्हे अपनी नवविवाहिता स्त्री लक्ष्मी से बढ़कर सुन्दरी जान पड़ा। इतनी देर के बाद उन्होने समझा कि नवीनचन्द्र का आशीर्वाद व्यर्थ न होगा।

समस्या-पूरण

(१)

देवपुर के ज़मींदार रामगोपाल अपने बड़े लड़के को ज़मींदारी और घर-गृहस्थी सौंपकर काशीवास करने चले गये। देश के सब अनाथ दरिद्र लोग उनके लिए हाहाकार करके रोने लगे। सब यही कहने लगे कि ऐसी उदारता और धर्मनिष्ठा कलियुग मे नही देख पडती।

उनके पुत्र कृष्णगोपाल आजकल के एक सुशिक्षित बी० ए० हैं। दाढ़ी है, चश्मा लगाते हैं, किसी के पास अधिक उठते-बैठते नही। अत्यन्त सच्चरित हैं, यहाँ तक कि तमाखू भी नहीं खाते। अत्यन्त भलेमानुस का सा चेहरा है। लेकिन मिज़ाज कडा है।

उनकी प्रजा को शीघ्र ही इस बात का अनुभव हो गया। बूढ़े मालिक से वश चलता था, किन्तु यह मालिक एक पैसा भी छोड़नेवाले नही। निर्दिष्ट समय मे भी एक दिन की रियायत नही होती।

कृष्णगोपाल के हाथ मे अधिकार आते ही उन्होंने देखा कि बहुत से ब्राह्मणों के पास बिना लगान की ज़मीन है और बहुत से लोगो के पास कम लगान पर भी ज़मीन है। राम-

गोपाल से अगर कोई कुछ प्रार्थना करता था तो वे उसे पूर्ण किये बिना नही रहते थे। यह उनमे एक कमज़ोरी थी।

कृष्णगोपाल ने कहा—यह कभी नहीं हो सकता। मैं आधी ज़मीन बिना लगान के नहीं दे सकता। उन्हे निम्न-लिखित दो युक्तियाॅं सूझीं।

एक यह कि जो निकम्मे लोग घर मे बैठे-बैठे इस ज़मीन का मुनाफ़ा खा-खाकर मोटे हो रहे हैं वे अधिकांश ही अप-दार्थ और दया के अयोग्य हैं। इस प्रकार का दान देना मानों आलस्य को प्रश्रय देना है।

दूसरे यह कि उनके बाप-दादे के समय की अपेक्षा इस समय जीविका बहुत ही दुर्लभ हो गई है, ख़र्च भी बहुत बढ़ गया है। इस समय अपनी मान-मर्यादा बनाये रखकर चलने में चौगुना ख़र्च करना पडता है। अतएव उनके पिता जिस प्रकार निश्चिन्त होकर दोनों हाथों से सम्पत्ति लुटा गये हैं वैसा करने से काम नही चल सकता। बल्कि उस बिखरी हुई सम्पत्ति को घर मे बटोर लाना ही कर्तव्य है।

कर्त्तव्य-बुद्धि ने जो कहा वही करना उन्होने शुरू कर दिया। वे एक सिद्धान्त पकडकर चलने लगे।

घर से जो बाहर चला गया था वह फिर धीरे-धीरे घर मे आने लगा। उन्होने पिता के बहुत थोड़े से दान को बहाल रक्खा। और जो रक्खा भी उसके लिए ऐसा ढङ्ग कर दिया जिसमे वह चिरस्थायी दान न समझा जाय।

रामगोपाल को काशी में ही प्रजा के दुःख का हाल सुन पड़ा। यहाँ तक कि कोई-कोई असामी उनके पास जाकर अपने दुःख की गाथा सुना आया। रामगोपाल ने कृष्णगोपाल को चिट्ठी लिखी कि यह काम अच्छा नहीं होता।

कृष्णगोपाल ने उत्तर में लिखा कि पहले जिस तरह दान किया जाता था उस तरह आमदनी की सूरतें भी बहुत सी थी। तब ज़मींदार प्रजा को देता था और प्रजा ज़मींदार को देती थी। इस समय नये आईन के अनुसार तरह-तरह से ज़मींदारों की आमदनी बन्द हो गई है, केवल लगान मिलता है। और केवल लगान वसूल करने के सिवा ज़मींदार के अन्यान्य गौरव-जनक अधिकार भी उठ गये हैं। अतएव आजकल यदि मैं अपनी उचित आमदनी पर कड़ी दृष्टि न रक्खूँ तो खाऊँ क्या! इस समय प्रजा भी मुझे कुछ अधिक न देगी और मैं भी उसे कुछ अधिक न दूँगा। दान और ख़ैरात करने से कुछ दिन मे ही कङ्गाल हो जाना पड़ेगा— इज़्ज़त और कुलगौरव की रक्षा करना कठिन हो जायगा।

रामगोपाल समय के इतने अधिक परिवर्त्तन से चिन्तित हो उठे। उन्होंने सोचा, आजकल के लड़के आजकल के अनुसार ही काम करते हैं—मेरे समय के नियम अब काम नहीं दे सकते। मैं दूर बैठे रहकर इस काम मे हस्तक्षेप करूँगा तो लड़के कहेंगे कि तुम अपनी सम्पत्ति लो—हमसे इसकी

रक्षा न हो सकेगी। काम क्या है भाई, मैं जीवन के अन्तिम दिन भगवद्भजन में ही बिताऊँगा।

(२)

इसी तरह काम चलने लगा। अनेक मुक़द्दमे चलाकर, दङ्गा-हङ्गामा करके, कृष्णगोपाल ने सब ढङ्ग अपने मन के माफ़िक़ कर लिया।

बहुत सी प्रजा ने डरकर सब प्रकार से कृष्णगोपाल के अनुगत होना स्वीकार कर लिया। केवल अहमदी का लड़का रमज़ानी किसी तरह क़ाबू में नहीं आया।

कृष्णगोपाल का आक्रोश भी उसी पर सबसे अधिक था। ब्राह्मण को माफ़ी देने का तो कुछ अर्थ भी समझ में आता है, लेकिन मुसलमान के लड़के को माफ़ी देने का क्या मतलब? एक मामूली मुसलमान विधवा का लड़का गाँव के ख़ैराती स्कूल में थोड़ा सा लिखना-पढ़ना सीखकर ऐसा घमण्डी हो गया है कि किसी को मानता ही नहीं।

कृष्णगोपाल को पुराने कर्मचारियों से मालूम हुआ कि रमज़ानी और उसकी माँ पर बहुत दिनों से रामगोपाल का अनुग्रह चला जाता है। इस अनुग्रह का कोई विशेष कारण वे बतला नहीं सके। शायद अनाथ विधवा का दुःख देखकर ही रामगोपाल को उस पर दया आ गई थी।

किन्तु कृष्णगोपाल को पिता का यह अनुग्रह सबसे बढ़-कर अयोग्य जान पड़ा। ख़ासकर रमज़ानी के यहाँ की

पहले की ग़रीबी की हालत कृष्णगोपाल ने देखी नहो। इस समय हाथ-पैर फैलने की अवस्था मे रमज़ानी की बढ़ा-बढ़ी और दम्भ देखकर कृष्णगोपाल को जान पड़ता था कि मानों रमज़ानी की मा अहमदी ने दया-दुर्बल रामगोपाल को धोखा देकर उनकी सम्पत्ति का एक अंश ठग लिया है।

रमज़ानी भी उद्धत प्रकृति का युवक था। उसने कहा—जान चली जायगी तो भी मैं माफ़ी की एक तिल भी ज़मीन न छोड़ूंगा। दोनों ओर से मुक़दमेबाज़ी शुरू हो गई।

रमज़ानी की विधवा माता ने लड़के को बार-बार समझाकर कहा कि ज़मींदार के साथ झगड़ा करने की कोई ज़रूरत नहीं है। अब तक जिनकी कृपा पर निर्भर करके जीवन बिताया है उन्हीं की कृपा पर निर्भर रहना इस समय भी कर्तव्य है। ज़मींदार के कहने के अनुसार कुछ माफ़ी छोड़ दो।

रमज़ानी ने कहा—अम्मा, तुम इन मामलों मे कुछ भी नहीं जानती।

मुक़दमेबाज़ी मे रमज़ानी की हार होने लगी; किन्तु जितना ही वह हारने लगा उतनी ही उसकी ज़िद बढ़ने लगी। उसने अपनी माफ़ी की रक्षा करने मे सर्वस्व का दाॅव लगा दिया।

एक दिन तीसरे पहर अहमदी उपहार-स्वरूप अपने खेत की कुछ तरकारी लेकर, लड़के से चुराकर, कृष्णगोपाल से मिलने गई। बुढ़िया मानो अपनी सकरुण मातृदृष्टि के द्वारा स्नेहपूर्वक कृष्णगोपाल के सारे शरीर पर हाथ फेरकर बोली—

भैया, अल्ला तुम्हारा भला करें। बेटा, रमजानी को तुम बिगाड़ना नहीं। मैं उसे तुमको सौंपती हूँ। उसे तुम अपना छोटा भाई समझकर उसके खाने-पीने का ज़रिया वह ज़मीन दे दो। तुम्हारे बेशुमार दौलत है। जितनी तुम्हारी ज़मीन उसके पास है उतनी ज़मीन से तुम्हारा कुछ बन-बिगड़ नहीं सकता।

अधिक अवस्था की स्वाभाविक प्रगल्भता के कारण बुढ़िया नाता जोड़ने आई है, यह देखकर कृष्णगोपाल बहुत ही खीझ उठे। उन्होंने कहा—तुम औरत हो, इन बातों को नहीं समझ सकती। अगर कुछ कहना हो तो अपने लड़के को भेज देना।

अहमदी ने अपने लड़के और पराये लड़के दोनों से सुना कि वह इस मामले मे कुछ नहीं समझ सकती! अल्ला का नाम लेकर आँसू पोछते-पोछते वह घर लौट गई।

(३)

मुक़द्दमा फ़ौजदारी से दीवानी, दीवानी से डिट्रिक्ट कोर्ट और वहाँ से हाईकोर्ट पहुँचा। इसी मे डेढ़ वर्ष बीत गया! रमज़ानी जब ऋण मे चोटी तक डूब गया तब अपील मे उसकी आंशिक जय हुई।

किन्तु स्वर्ग से गिरा तो खजूर में अटका। महाजन ने मौक़ा देखकर डिक्री जारी करा दी। रमज़ानी का सर्वस्व नीलाम होने का दिन निश्चित हो गया।

उस दिन सोमवार, बाज़ार का दिन था। एक छोटी सी नदी के किनारे बाज़ार लगती थी। बरसात मे नदी भरी हुई

थी। बहुत से सौदे बिक रहे थे। असाढ़ का महीना था। कटहल ख़ूब बिक रहे थे। बादल घिरे हुए थे। शीघ्र ही पानी बरसनेवाला जान पड़ता था।

रमज़ानी भी बाज़ार में सौदा ख़रीदने आया था, लेकिन उसके पास एक पैसा भी न था। आजकल उसे उधार भी नहीं मिलता। वह एक बड़ा चाक़ू और थाली लेकर बाज़ार आया था। इन्हीं दोनों चीज़ों को गिरो रखकर आज वह सौदा लेनेवाला था।

तीसरे पहर कृष्णगोपाल भी हवा खाने निकले थे। दो-तीन सिपाही भी लम्बी लाठी लिये उनके साथ थे। बाज़ार का शोर-ग़ुल सुनकर कृष्णगोपाल उधर ही चले। बाज़ार मे घुसकर एक आदमी से कृष्णगोपाल बातें करने लगे। इसी समय चाक़ू तानकर रमज़ानी शेर की तरह गरजता हुआ उसी ओर झपटा। लोगों ने राह मे ही पकड़कर उसका चाक़ू छीन लिया। तुरन्त वह पुलीस मे दे दिया गया और फिर उसी तरह बाज़ार की ख़रीद-फ़रोख़्त का काम होने लगा।

इस घटना से कृष्णगोपाल कुछ प्रसन्न नहीं हुए। हम जिसका शिकार करना चाहते हो वह अगर हम पर वार करने आवे तो उसकी ऐसी बदज़ाती और बे-अदबी नहीं सही जा सकती। जो हो, जैसा बदमाश था वैसी ही सज़ा उसे मिलेगी।

इस घटना का हाल सुनकर कृष्णगोपाल के घर मे औरतों के रोंगटे खड़े हो आये। सबने कहा—बड़ा पाजी

है। उसे उचित दण्ड मिलने की सम्भावना से सबको सान्त्वना प्राप्त हुई।

इधर उसी रात को विधवा अहमदी को पुत्रहीन, अन्नहीन घर मृत्यु से भी अधिक भयानक जान पड़ने लगा। इस बात को सब लोग भूल गये। सबने भोजन किया। खा-पीकर सब सो गये। केवल बुढ़िया अहमदी के लिए पृथ्वी पर की सब घटनाओं की अपेक्षा यही घटना सबसे मुख्य हो उठी। तथापि इस घटना के विरुद्ध युद्ध करने के लिए पृथ्वी भर पर और कोई नहीं है। केवल दीप-हीन झोपड़ी में वही बुढ़िया अल्ला-अल्ला कर रही थी।

(४)

इसी तरह तीन दिन बीत गये। कल डिपुटी मजिस्ट्रेट के इजलास में रमज़ानी का विचार होगा। कृष्णगोपाल को गवाही देने के लिए जाना होगा। अब से पहले ज़मींदार कभी गवाही के कटघरे में नहीं खड़े हुए। किन्तु इस मामले में गवाही देने जाने में कृष्णगोपाल को कोई आपत्ति नहीं है।

दूसरे दिन ठीक समय पर घड़ी लगाकर, पगड़ी पहनकर, पालकी पर चढ़कर कृष्णगोपाल कचहरी में गये। डिपुटी मजिस्ट्रेट ने इज़्ज़त के साथ उनको अपने बराबर कुर्सी दी। इजलास में आज बड़ी भीड़ थी। अदालत में इतना जमाव आज तक कभी नहीं हुआ।

मुक़द्दमा पेश होने मे कुछ भी देर न थी, इसी समय कृष्णगोपाल के एक सिपाही ने आकर उनके कान मे कुछ कहा। वे उसी समय "एक ज़रूरत है" कहकर अदालत से उठकर बाहर आये।

बाहर आकर देखा, कुछ दूर पर बर्गद के पेड़ के नीचे उनके काशीवासी वृद्ध पिता खड़े हुए हैं। नंगे पैर, राम-नामी दुपट्टा ओढ़े और हाथ में माला लिये जप रहे हैं। उनके दुर्वल शरीर मे एक प्रकार की स्निग्ध ज्योति झलक रही थी। मस्तक से एक प्रकार की प्रशान्त करुणा जगत् के ऊपर जैसे बरस रही थी।

चपकन वगैरह पहने कृष्णगोपाल ने बड़े कष्ट से अपने पिता को प्रणाम किया। सिर की पगड़ी गिरते-गिरते बची, जेब से घड़ी बाहर निकल पड़ी। उन्हें ठीक करके कृष्ण-गोपाल ने पिता से, पास ही एक वकील के तख़्त पर चलकर, बैठने के लिए अनुरोध किया।

रामगोपाल—नहीं, मुझे जो कुछ कहना है, यहीं कहूँगा।

कृष्णगोपाल के सिपाही कौतूहली लोगों की भीड़ को दूर हटाने की चेष्टा करने लगे।

रामगोपाल ने कहा—रमज़ानी को छुड़ाने की चेष्टा करनी होगी, और उसकी सम्पत्ति जो तुमने ले ली है वह लौटा देनी होगी।

कृष्णगोपाल ने विस्मित होकर पूछा—इसी लिए आप काशी से इतनी दूर आये हैं? रमज़ानी पर आपका इतना अनुग्रह क्यो है?

रामगोपाल ने कहा—यह सुनकर तुम क्या करोगे?

कृष्णगोपाल ने नहीं माना और कहा—अयोग्यता का विचार करके कितने ही लोगो के दानद्रव्य और सम्पत्ति को मैंने ले लिया है। उनमे बहुत से ब्राह्मण भी थे। लेकिन आपने उन मामलो मे कुछ भी दस्तन्दाज़ी नहीं की। और इस मुसलमान के लिए आपने इतनी चेष्टा की! मुक़द्दमा चलाकर अगर मैं रमजानी को छोड़ दूँगा और सब सम्पत्ति वापस कर दूँगा तो लोग क्या कहेंगे।

रामगोपाल कुछ देर तक चुप रहे। अन्त को जल्दी-जल्दी काँपती हुई उँगलियों से माला फेरते हुए कुछ काँप रहे स्वर मे उन्होने कहा—अगर लोगो के आगे सब ख़ुलासा करके कहना ज़रूरी है तो उनसे कहना—रमज़ानी तुम्हारा भाई, मेरा पुत्र है।

कृष्णगोपाल ने चौककर कहा—मुसलमानी के पेट से?

रामगोपाल ने कहा—हाँ भैया!

कृष्णगोपाल ने बहुत देर तक चुपचाप खड़े रहकर कहा—यह सब पीछे होगा, पहले आप घर चलिए।

रामगोपाल ने कहा—नहीं, मैं तो अब घर मे जाऊँगा नहीं। मैं यहो से लौटा जाता हूँ। अब तुमको जो उचित जान पड़े सो करना।

यह कहकर आशीर्वाद देकर वे चल दिये। उनकी आँखो मे आँसू भरे हुए थे और शरीर काँप रहा था।

कृष्णगोपाल कुछ निश्चित न कर सके कि पिता से क्या कहना चाहिए। किन्तु यह बात अवश्य उनके मन मे आई कि अगले ज़माने की धर्मनिष्ठा ऐसी ही है। शिक्षा और चरित्र मे उन्होंने अपने को पिता की अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ समझा। उन्होने निश्चय कर लिया कि एक निश्चित सिद्धान्त न रहने का ही यह कुफल है।

अदालत की ओर जब वे आये तब उन्होंने देखा, रमज़ानी दो सिपाहियों के बीच मे हथकड़ी पहने बैठा है। उसका शरीर दुर्बल हो रहा है। ओठ सूख रहे हैं। आँखों मे एक प्रकार का तीव्र तेज झलक रहा है। एक मैला कपड़ा पहने हुए है। वह कृष्णगोपाल का भाई है!

डिपुटी मजिस्ट्रेट के साथ कृष्णगोपाल की दोस्ती थी। मुक़द्दमा गोलमाल करके एक तरह से ख़ारिज हो गया। कुछ ही दिनों मे रमज़ानी की पहले की सी अवस्था हो गई। किन्तु इसका कारण उसे भी नहीं मालूम हुआ कि यह छुटकारा क्यों हुआ और कृष्णगोपाल ने सब माफ़ी क्यों फिर दे डाली। अन्य लोगों को भी इस घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ।

मुक़द्दमे के समय रामगोपाल के आने की बात दमभर मे फैल गई थी। सब लोग इस बात को लेकर कानाफूसी करने लगे।

सूक्ष्म बुद्धिवाले वकीलों ने अनुमान से सब बातें जान ली। हरेकृष्ण वकील को रामगोपाल ने अपने ख़र्च से लिखा-पढ़ाकर इस दर्जे को पहुँचाया था कि वह वकील साहब कहलाते थे। वह बराबर सन्देह करता था। किन्तु इतने दिनों के बाद उसने पूरी तौर से समझ लिया कि अच्छी तरह अनुसन्धान करने से सभी साधुओं की पोल खोली जा सकती है। कोई चाहे जितनी माला फेरे, पृथ्वी पर सब मेरे ही ऐसे हैं। संसार में साधु और असाधु में अन्तर इतना ही है कि साधु लोग कपटी होते हैं और असाधु लोग निष्कपट होते है। अर्थात् साधु लोग चुराकर कुकर्म करते हैं और असाधु लोग खुलासा। जो हो, रामगोपाल के दया-धर्म-महत्त्व आदि को कपट ठहराकर हरेकृष्ण ने इतने दिनों की समस्या हल कर ली। और न-जानें किस युक्ति के अनुसार उससे कृतज्ञता का बोझ भी मानों उसके सिर पर से उतर गया।

प्रायश्चित्त

(१)

स्वर्ग और मनुष्यलोक के बीच में एक अनिर्देश्य अरा जक स्थान है, जहाँ राजा त्रिशंकु लटक रहे हैं और जह आकाशकुसुमों के ढेर पैदा होते हैं। उस वायुदुर्गवेष्टित महा देश का नाम है "होता तो हो सकता"। जो लोग महत् कार्य करके अमरता प्राप्त कर गये हैं वे धन्य हो गये हैं। जो लोग साधारण क्षमता लेकर साधारण मनुष्यों मे साधारण भाव से संसार के नित्य प्रति के कर्त्तव्यों के साधन में सहायता करते हैं वे भी धन्य हैं। किन्तु जो लोग भाग्य के भ्रम से इन दोनों अव-स्थाओं के बीच में पड़े हुए हैं, उनके लिए और कोई उपाय नही है। वे कोई एक बात होने से कुछ हो सकते थे, किन्तु उसी कारण से उन लोगों के लिए कुछ होना सबकी अपेक्षा असम्भव है।

हमारे अनाथबन्धु बाबू वैसे ही बीच मे लटके हुए विधाता से विडम्बना को प्राप्त युवक हैं। सबका यही विश्वास है कि वे इच्छा करते तो सभी बातों में कृतकार्य हो सकते। किन्तु किसी समय उन्होंने इच्छा भी नही की और किसी काम मे कृतकार्य भी नहीं हो सके। इसी कारण उनके प्रति सबका विश्वास अटल बना रह गया। सबने कहा—वे परीक्षा मे औवल

नम्बर पावेंगे, किन्तु उन्होंने परीक्षा ही नहीं दी। सबका विश्वास है कि वे नौकरी करते तो हर एक डिपार्ट मे अनायास ही अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त कर सकते, किन्तु उन्होंने कोई नौकरी ही नहीं की। साधारण लोगों के प्रति उनको विशेष घृणा थी; क्योंकि वे अत्यन्त सामान्य हैं। असाधारण लोगों के प्रति उन्हे कुछ भी श्रद्धा न थी, क्योंकि अगर वे चाहते तो उनकी भी अपेक्षा असाधारण हो सकते थे।

अनाथबन्धु की ख्याति-प्रतिपत्ति-सुख-सम्पत्ति-सौभाग्य सब देश-काल से परे असम्भवता के भाण्डार मे निहित था। वास्तव मे विधाता ने उनको एक धनी ससुर और एक सुशीला स्त्री दी थी। स्त्री का नाम था विन्ध्यवासिनी।

स्त्री का नाम अनाथबन्धु को पसन्द न था और स्त्री को भी वे रूप और गुण मे अपने अयोग्य समझते थे। किन्तु स्त्री के मन मे स्वामी के सौभाग्य-गर्व की सीमा नही थी। सब स्त्रियों के सब स्वामियो की अपेक्षा सब बातों मे विन्ध्यवासिनी के स्वामी श्रेष्ठ हैं, इस बारे मे विन्ध्यवासिनी को कुछ सन्देह न था। उसके स्वामी को भी कुछ सन्देह न था। साथ ही सर्वसाधारण का विश्वास भी इन स्वामी और स्त्री की धारणा के अनुकूल था।

विन्ध्यवासिनी सदा इसके लिए शङ्कित रहती थी कि यह स्वामी के गौरव का गर्व कही रत्ती भर भी खण्डित न हो। वह अगर अपने हृदय के आकाश-भेदी अटल भक्ति-पर्वत के

उसे स्कालरशिप भी मिला है। सुनकर अकारण ही विन्ध्य-वासिनी को यह जान पड़ा कि कमला का यह आनन्द विशुद्ध आनन्द नहीं है—इसके भीतर उसके स्वामी के प्रति एक प्रकार का गूढ़ व्यंग्य भी है। इसी कारण सखी के आनन्द मे उल्लास न प्रकट करके बल्कि ज़बर्दस्ती गले पड़कर कुछ रूखे स्वर मे उसने सुना दिया कि एफ़० ए० की परीक्षा कोई परीक्षा ही नहीं। यहाँ तक कि विलायत के किसी कालेज मे बी० ए० के नीचे परीक्षा ही नहीं है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि इस ख़बर और युक्ति को उसने स्वामी के मुख से ही सुना था।

सुसंवाद सुनाने आकर कमला सहसा अपनी परमप्यारी सखी की ओर से ऐसा आघात पाकर पहले कुछ विस्मित हुई। किन्तु वह भी तो स्त्री ही थी। इसी कारण दमभर में उसने विन्ध्यवासिनी के मन का भाव समझ लिया। भाई के अप-मान से उसी दम उसकी ज़बान मे भी तीव्र विष सञ्चारित हो गया। उसने कहा—बहन, मैं तो विलायत गई नहीं, और विलायत हो आनेवाले स्वामी से मेरा व्याह भी नहीं हुआ। ये सब बातें मैं कैसे जान सकती हूँ। मैं मूर्ख औरत ठहरी। साधारणत: मेरी समझ मे यही आता है कि बङ्गाली के लड़के को कालेज मे एफ़० ए० की परीक्षा देनी होती है और वह भी सब नहीं दे सकते।—अत्यन्त निरीह और बन्धुता के भाव से ये बातें कहकर कमला चली गई। कलह करने की प्रकृति

न होने के कारण विन्ध्यवासिनी सुनकर चुप हो रही और कमरे के भीतर जाकर चुपचाप रोने लगी।

थोड़े ही समय के बाद और एक घटना हुई। एक दूर रहनेवाला धनी परिवार कुछ दिनो के लिए कलकत्ते मे आकर विन्ध्यवासिनी के पिता के यहाँ ठहरा। इस उपलक्ष में विन्ध्यवासिनी के पिता राजकुमार बाबू के यहाँ बडी धूम पड़ गई। अनाथबन्धु बाहर के जिस बड़े बैठकख़ाने पर दख़ल जमाये हुए थे उसे अभ्यागतों के लिए ख़ाली कर दूसरे कमरे मे कुछ दिनों के लिए रहने को उनसे अनुरोध किया गया।

इस घटना से अनाथबन्धु कुढ़ गये। पहले स्त्री के पास जाकर उसके पिता की निन्दा करके, उसे रुलाकर, उन्होंने ससुर से बदला चुकाया। उसके बाद भोजन न करने आदि अन्यान्य उपायों से उन्होंने अपने मन का भाव प्रकट करने की चेष्टा की। यह देखकर विन्ध्यवासिनी बहुत ही लज्जित हुई। उसके मन मे जो सहज आत्ममर्यादा का बोध था उसी से उसने यह समझा कि ऐसी अवस्था मे सबके आगे अपने कुढ़ने का भाव प्रकट करने से बढ़कर लज्जा और अपने अपमान की बात और नहीं है। हाथ जोड़कर, पैरों पड़कर, रो-धोकर, बड़े कष्ट से उसने अपने स्वामी को शान्त किया।

विन्ध्यवासिनी विवेक से ख़ाली न थी। इसी कारण इसके लिए उसने अपने पिता-माता को दोषी नहीं ठहराया। उसने सोचा, यह घटना सहज और स्वाभाविक है। किन्तु यह

बात भी उसके मन मे आई कि उसके स्वामी सुसराल में रहने के कारण आदर को अपने हाथो गँवा रहे हैं।

उस दिन से नित्य वह स्वामी से कहने लगी कि तुम अपने घर मुझे ले चलो, अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी।

अनाथबन्धु के मन मे अहङ्कार तो यथेष्ट था, किन्तु अपनी प्रतिष्ठा का ख़याल बिल्कुल न था। अपने घर की ग़रीबी मे लौट जाने के लिए किसी तरह वे राज़ी नहीं हुए। तब विन्ध्यवासिनी ने कुछ दृढ़ता प्रकट करके कहा—अगर तुम न ले चलोगे तो मैं अकेली ही जाऊँगी।

अनाथबन्धु ने मन ही मन बहुत खीझकर अपनी स्त्री को कलकत्ते के बाहर छोटे गाँव मे अपने कच्चे और टूटे घर मे ले जाने का उद्योग किया। यात्रा के समय राजकुमार बाबू और स्त्री ने लड़की से और कुछ दिन मायके मे रहने के लिए अनुरोध किया। कन्या चुपचाप सिर झुकाये गम्भीर भाव से बैठी रही और इस प्रकार उसने जता दिया कि नहीं, यह नहीं हो सकता।

सहसा उसकी यह दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर पिता-माता को यह सन्देह हुआ कि बिना जाने शायद किसी बात से उसे चोट पहुँचाई गई है। राजकुमार बाबू ने व्यथित भाव से उससे पूछा—बेटो, क्या हमारे किसी बर्ताव से तुम्हारे हृदय को चोट पहुँची है?

विन्ध्यवासिनी ने अपने पिता की ओर करुण दृष्टि से देखकर कहा—कभी नहीं। मैं यहाँ बड़े सुख से रही हूँ।

यह कहकर विन्ध्यवासिनी रोने लगी। किन्तु उसका इरादा वैसा ही बना रहा।

माता-पिता ने एक लम्बी साँस लेकर अपने मन में कहा—चाहे जितने स्नेह और आदर से पालो, किन्तु ब्याह के बाद लड़की पराई हो जाती है।

अन्त को आँखों में आँसू भरे हुए विन्ध्यवासिनी सबसे बिदा होकर, पिता के घर और साथियों को छोड़कर, पालकी पर सवार हुई।

(२)

कलकत्ते के अमीर के घर और देहात के ग़रीब के घर मे आकाश-पाताल का अन्तर होता है। किन्तु विन्ध्यवासिनी ने घड़ी भर के लिए भाव अथवा आचरण से असन्तोष नहीं प्रकट किया। सदा ख़ुश रहकर गृहस्थी के कामों में सास की सहायता करने लगी। समधियाने की ग़रीबी का हाल जानकर राजकुमार बाबू ने कन्या के साथ एक दासी भेज दी थी। विन्ध्यवासिनी ने स्वामी के घर पहुँचते ही उसे बिदा कर दिया। यह आशङ्का भी उसे असह्य जान पड़ी कि बड़े घर की दासी उसकी सुसराल की ग़रीबी देखकर हर घड़ी मन ही मन नाक-भौं सिकोड़ा करेगी।

सास स्नेह के मारे विन्ध्यवासिनी को मेहनत के काम से रोकने की चेष्टा करती थी। किन्तु विन्ध्यवासिनी आलस्य-हीन अश्रान्त भाव से प्रसन्नमुख रहकर सब काम-काज करती थी।

इस प्रकार उसने सास के हृदय पर अधिकार जमा लिया और गाँव की औरतें भी उसके इस गुण को देखकर मुग्ध हो गईं।

किन्तु इसका फल सम्पूर्ण रूप से सन्तोष-जनक नहीं हुआ। क्योंकि संसार का नियम शिक्षावली के प्रथम भाग की तरह साधुभाषा मे लिखी गई सरल उपदेशावली नहीं है। निष्ठुर शैतान बीच मे आकर सब उपदेश-सूत्रो मे उलझन डाल देता है। इसी से सब समय अच्छे काम का अच्छा ही फल नहीं होता। एकाएक कोई गोलमाल उठ खड़ा होता है।

अनाथबन्धु के एक बडा और दो छोटे भाई थे। बडा भाई परदेश मे नौकर था और वह महीने मे जो पचास रुपये भेजता था उसी से घर का काम चलता था और दोनो छोटे भाई पढ़ते लिखते थे।

यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं कि आजकल पचास रुपये महीने मे घर का ख़र्च चलना ही कठिन है। किन्तु बडे भाई की स्त्री श्यामा के अहङ्कार के लिए इतने रुपये ही यथेष्ट थे। स्वामी लगातार साल भर नौकरी मे लगा रहता था, इसी लिए उसकी स्त्री लगातार साल भर विश्राम करने की अधिकारिणी थी। वह काम-काज कुछ न करती थी। तथापि उसका रङ्ग-ढङ्ग ऐसा था कि उसके स्वामी की तनख़्वाह से घर का ख़र्च चलने के कारण घर भर उसका परम अनुगृहीत है।

विन्ध्यवासिनी जब ससुराल मे आकर गृहलक्ष्मी की तरह दिन-रात घर के काम-काज मे लगी रहने लगी तब श्यामा-

शङ्करी के ओछे हृदय में एक प्रकार की जलन पैदा हो गई। इसका कारण समझना और समझाना कठिन है। जान पड़ता है, उसने अपने मन मे सोचा कि मँझली बहू बड़े घर की लड़की होकर भी केवल दिखावे के लिए गृहस्थी के नीच कामो मे लगी रहती है और इसका मतलब केवल मुझे लोगों की नज़र से गिराना ही है। चाहे जिस कारण से हो, पचास रुपये का महीना कमानेवाले स्वामी की स्त्री धनी घराने की लड़की को अच्छी नजर से देख न सकी। उसे मँझली बहू की नम्रता के भीतर असह्य अभिमान के लक्षण देख पड़ने लगे।

इधर अनाथबन्धु ने गाँव मे आकर एक लाइब्रेरी स्थापित की। दस-बीस स्कूल के छात्रों को जमा करके आप सभापति होकर अख़बारों मे तार द्वारा सभा के समाचार भेजने लगे। यहाँ तक कि किसी-किसी अँगरेज़ी के अख़बार के विशेष संवाद-दाता बनकर उन्होंने गाँव के लोगों को विस्मित कर दिया। किन्तु ग़रीबी के घर मे एक पैसा लाने की कोई सूरत नहीं हुई बल्कि व्यर्थ का ख़र्च और भी बढ़ गया।

विन्ध्यवासिनी कोई नौकरी करने के लिए बारम्बार अनाथ बन्धु से कहने लगी। किन्तु उन्होंने इस पर कुछ भी ध्यान नही दिया। स्त्री से कहा—मेरे लायक़ नौकरियाँ ज़रूर हैं; लेकिन पक्षपाती गवर्नमेण्ट उन जगहों पर बड़े-बड़े अँगरेज़ों को नौकर रखती है। बङ्गाली के हजार योग्य होने पर भी उसके उन जगहों के पाने की कुछ भी आशा नहीं है।

श्यामाशङ्करी अपने देवर और देवरानी को सुनाकर हर घड़ी स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से वाक्यबाणों की वर्षा करने लगी। गर्व के साथ अपनी ग़रीबी का उल्लेख करके कहने लगी—हम ग़रीब आदमी हैं, बड़े आदमी की लड़की और दामाद का पालन-पोषण कैसे करें? वहाँ तो मज़े में थे, कोई दुःख न था—यहाँ सूखी रोटियाँ किस तरह खाई जायँगी?

सास बड़ी बहू को डरती थीं। मँझली बहू का पक्ष लेकर कुछ कहने का साहस उन्हें नहीं होता था। मँझली बहू भी पचास रुपये महीने की रोटियों और कटुवाक्यों को चुपचाप हज़म करने लगी।

इसी बीच में कुछ दिनों की छुट्टी पाकर अनाथबन्धु के बड़े भाई घर आये और आकर नित्य अपनी स्त्री के मुख से उद्दीपना-पूर्ण ओजस्विनी भाषा की वक्तृताएँ सुनने लगे। अन्त को जब नित्य रात को नींद का आना हराम हो गया तब एक दिन अनाथबन्धु को बुलाकर शान्त भाव से स्नेह के साथ उन्होंने कहा—तुमको कोई नौकरी ढूँढ़ने की कोशिश करनी चाहिए, केवल मैं अकेला किस तरह गृहस्थी का बोझ सँभाल सकता हूँ।

अनाथबन्धु ने लात खाये हुए साँप की तरह लम्बी साँसें लेकर अपने मन का भाव प्रकट किया। दो बेला अत्यन्त अखाद्य रूखी रोटी मोटा भात देकर स्त्री का ताने मारना और भाई का नौकरी तलाश करने के लिए कहना! वे उसी समय स्त्री को लेकर सुसराल जाने के लिए तैयार हो गये।

किन्तु स्त्री किसी तरह इस बात पर राज़ी नहीं हुई। उसने अपनी राय यह ज़ाहिर की कि बड़े भाई की रोटी और भावज की गाली पर छोटे भाई का पारिवारिक अधिकार है, किन्तु सुसराल में जाकर रहना बड़ी ही लज्जा की बात है। क्योंकि उस पर कोई दावा नहीं है। विन्ध्यवासिनी सुसराल मे दीन-हीन की तरह झुककर रह सकती है, किन्तु बाप के यहाँ वह अपनी इज़्ज़त बनाये रखकर सिर उठाकर रहना चाहती है।

इसी समय गाँव के हाईस्कूल में थर्ड मास्टर की जगह ख़ाली हुई। अनाथबन्धु के भाई और विन्ध्यवासिनी दोनों ही अनाथबन्धु से वहाँ नौकरी करने के लिए बारम्बार कहने लगे। इसका भी फल उलटा ही हुआ। अपने सगे भाई और स्त्री को ऐसी अत्यन्त तुच्छ नौकरी के लिए अनुरोध करते देखकर वे बहुत कुढ़े और संसार के सब काम-काज की ओर से उन्हें पहले से चौगुनी विरक्ति हो गई।

तब उनके बडे भाई ने बहुत सी मीठी बातें कहकर उनको मनाया। सभी ने अपने मन मे कहा—अब कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। अनाथबन्धु किसी तरह घर में ही बने रहे—कहीं रूठकर चले न जायँ—यही ग़नीमत है।

छुट्टी समाप्त होने पर अनाथबन्धु के दादा नौकरी पर चले गये। श्यामाशङ्करी कुछ दिन तक अपने रुद्ध आक्रोश से मुँह फुलाकर एक बड़ा भारी कुदर्शन चक्र बनाये रही। अनाथ-बन्धु ने विन्ध्यवासिनी से आकर कहा—आजकल विलायत

गये बिना कोई अच्छी नौकरी नहीं मिलती। मैं विलायत जाने का इरादा करता हूँ। तुम किसी बहाने से अपने बाप से कुछ रुपये माँगो।

एक तो विलायत जाने की बात सुनकर विन्ध्यवासिनी के सिर पर वज्र सा गिर पड़ा। उसके ऊपर पिता से रुपये माँगने की बात सुनकर वह मानों लज्जा के मारे मर गई।

ससुर से भी अपने मुँह से रुपये माँगने मे अनाथबन्धु के अहङ्कार ने बाधा डाली; किन्तु लड़की छल या कौशल से अपने बाप से रुपये नहीं ला सकती—इसका अर्थ कुछ भी उनकी समझ मे नहीं आया। इस बात को लेकर अनाथबन्धु स्त्री पर बहुत बिगड़े और स्त्री से बोलना तक छोड़ दिया। रोते-रोते विन्ध्य-वासिनी की आँखें फूल उठी। इसी तरह कुछ दिन बीत गये।

अन्त को आश्विन का महीना और दुर्गापूजा का समय निकट आया। दुर्गापूजा बङ्गालियो का एक बड़ा भारी त्यौहार होता है। कन्या और दामाद को लाने के लिए राजकुमार बाबू ने बहुत से सामान के साथ आदमी भेजा। साल भर के बाद कन्या अपने स्वामी के साथ पिता के घर आई। अब की दामाद की पहले से बहुत बढ़कर ख़ातिर हुई। विन्ध्य-वासिनी भी बाप के घर आनन्द मनाने लगी।

उस दिन छठ थी। कल सप्तमी से पूजा का आरम्भ होगा। धूमधाम, व्यग्रता और कोलाहल का अन्त न था। दूर और निकट के नातेदारों से राजकुमार बाबू का घर भर गया।

रात को काम-काज से थकी हुई विन्ध्यवासिनी लेटते ही सो गई। पहले जिस कमरे मे विन्ध्यवासिनी रहती थी, यह वह कमरा न था। अबकी विशेष आदर जताने के लिए राजकुमार बाबू ने अपना ख़ास कमरा विन्ध्यवासिनी को रहने के लिए दिया है। अनाथबन्धु कब सोने के लिए कमरे मे आये, यह विन्ध्यवासिनी को मालुम भी नही हुआ। वह उस समय गहरी नींद मे खर्राटे ले रही थी।

बड़े तड़के से ही शहनाई बजने लगा। किन्तु थकी हुई विन्ध्यवासिनी की आँख नहीं खुली। कमला और भुवन-मोहिनी नाम की दो सखिया छिपकर औरत-मर्द की बातचीत सुनने के इरादे से विन्ध्यवासिनी के कमरे के दर्वाज़े पर गईं। वहाँ कमरा बन्द पाकर और बातचीत की आहट न पाकर दोनों सखियाँ जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ीं। उस हँसी के शब्द से विन्ध्यवासिनी की आँख खुल गई। अनाथबन्धु कब उसके पास से उठकर चले गये, इसकी उसे कुछ ख़बर न थी। लज्जित हो पलँग से नीचे पैर रखते ही उसने देखा, उसकी मा का लोहे का सन्दूक़ खुला पडा है और उसके भीतर राजकुमार बाबू का जो कैशबक्स रक्खा रहता था, वह भी नहीं है।

तब उसे याद आया कि कल शाम को माता का चाभियों का गुच्छा खो जाने से बड़ी खलबली पड़ गई थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्हीं चाभियों को चुराकर किसी ने यह चोरी की है। तब एकाएक उसे यह ख़याल हुआ कि चोर ने

उसके स्वामी को किसी तरह की चोट न पहुँचाई हो! कलेजा धक से हो उठा। पलँग के नीचे नज़र डालकर देखा तो पाये के पास मा की चाभियों के गुच्छे के नीचे दबी हुई एक चिट्ठी रक्खी है।

चिट्ठी उसके स्वामी के ही हाथ की लिखी हुई थी। खोलकर उसे पढ़ने से मालूम हुआ कि अनाथबन्धु ने किसी मित्र की सहायता से विलायत जाने के लिए जहाज़ का किराया प्राप्त कर लिया है। अब वहाँ का ख़र्च चलाने के लिए और कोई उपाय न देखकर रात को ससुर का धन हथियाकर, बरामदे में लगी हुई सीढ़ी से बाग़ में उतरकर, दीवार फाँदकर वे भाग गये हैं। आज सवेरे ही जहाज़ छूट गया है।

पत्र पढ़कर विन्ध्यवासिनी के शरीर का सारा ख़ून ठण्ढा पड़ गया। वहीं पर खाट का पाया पकड़कर वह बैठ गई। उसकी देह के भीतर और कानों में निःस्तब्ध कालरात्रि की झिल्लीझङ्कार के समान एक प्रकार का भयानक कर्कश शब्द जैसे गूँज उठा। उस समय घर के आँगन से, परोसियों के घर से और दूर के मकानों से बहुत सी शहनाइयों का स्वर उठकर आकाश में गूँज रहा था। केवल कलकत्ते में ही नहीं, सारे बङ्गाल में उस समय लोग आनन्द-मग्न हो रहे थे।

घर भर में शरद ऋतु का उज्ज्वल घाम फैल गया। इतना दिन चढ़ने पर भी उत्सव के दिन विन्ध्यवासिनी के कमरे का द्वार बन्द देखकर कमला और भुवनमोहिनी हँसते-हँसते

किवाड़ पीटने लगीं। तब भी कुछ उत्तर न पाकर, कुछ डर-कर, ज़ोर से विन्ध्यवासिनी को पुकारने लगीं।

विन्ध्यवासिनी ने भर्राई हुई आवाज़ मे कहा—आती हूँ; तुम इस समय जाओ।

दोनों सखियाँ विन्ध्यवासिनी की तबियत ख़राब होने की आशङ्का से उसकी मा को बुला लाईं। माता ने आकर कहा—बिटिया, कैसी तबीयत है—अभी तक दर्वाज़ा क्यो बन्द कर रक्खा है?

विन्ध्यवासिनी ने उमड़े हुए आँसुओं को रोककर कहा—ज़रा बाबूजी को बुला लाओ।

माता बहुत ही डरीं। वे उसी समय पति को बुला लाईं। विन्ध्यवासिनी जल्दी से द्वार खोलकर माता और पिता को कमरे के भीतर ले गई और भीतर जाकर जल्दी से किवाडे बन्द कर लिये।

तब विन्ध्यवासिनी ने ज़मीन पर लोटकर अपने बाप के दोनों पैर पकड़कर छाती फाडकर निकल रहे आँसुओं को बहाते हुए गद्गद स्वर से कहा—बाबूजी, मुझे माफ़ करो, मैंने तुम्हारे सन्दूक से रुपये निकाल लिये हैं।

माता और पिता सन्नाटे मे आकर पलँग पर बैठ गये।

विन्ध्यवासिनी ने कहा—अपने स्वामी को विलायत भेजने के लिए उसने यह काम किया है।

पिता ने पूछा—तूने हमसे क्यों नहीं माँगा?

विन्ध्यवासिनी ने कहा—आप विलायत जाने मे रोक-टोक न करे इसलिए नही मांगे।

राजकुमार बाबू मन मे बहुत ही नाराज हुए। माता रोने लगी और बेटी भी रोने लगी। कलकत्ते मे चारों ओर विचित्र स्वर से उत्सव के बाजे बज रहे थे।

जो विन्ध्यवासिनी बाप से भी कभी रुपये नहीं मांग सकी और जो स्त्री स्वामी के लेश भर असम्मान को अपने सगे से भी छिपाने मे प्राणपण कर सकती थी उसका वह आत्माभिमान और पति के गौरव का दम्भ चूर्ण होकर प्रिय और अप्रिय, परिचित और अपरिचित सबके पैरो के नीचे धूल की तरह ठोकरे खाने लगा। पहले से ही सलाह करके, कुचक्र रचकर, चाभी चुराकर, स्त्री की सहायता से रात को ही चोरी करके अनाथबन्धु विलायत भाग गये हैं। इस बात की चर्चा नातेदारो से भरे घर मे चारो ओर ज़ोर शोर से होने लगी। दर्वाज़े के पास खड़े होकर भुवनमोहिनी, कमला, अनेक स्वजन, परोसी और नौकर-चाकरो ने सब बाते सुनी थीं। लड़की के बन्द कमरे मे उत्कण्ठा और घबराहट के साथ राजकुमार बाबू और उनकी स्त्री को जाते देखकर सभी लोग कौतूहल और आशङ्का के मारे व्यग्र होकर वहॉ जमा हो गये थे।

विन्ध्यवासिनी ने किसी को भी मुँह नहीं दिखाया। दर्वाज़ा बन्द किये खाना-पीना छोडकर उसी कमरे मे पडी रही। उसके इस शोक से किसी को दु:ख नहीं हुआ। कुचक्र

रचनेवाली की दुष्ट बुद्धि पर सबको बड़ा विस्मय हुआ। सोचा, मौक़ा न पड़ने के कारण अब तक विन्ध्यवासिन आचरण छिपे हुए थे। निरानन्द घर में किसी तरह का उत्सव सम्पन्न हो गया।

(३)

अपमान और विषाद से सिर झुकाये हुए विन्ध्यवा सुसराल आई। वहाँ पुत्र के वियोग से कातर विधवा स के साथ पति के विरह से पीड़ित बहू का मेल और भी गया। दोनों परस्पर एक दूसरे के दुःख का अनुभव कर हुई चुपचाप शोक की छाया के नीचे गहरी सहिष्णुता के स घर के छोटे से छोटे काम को भी अपने हाथ से सम्पन्न क लगीं। सास जितना निकट आई, पिता-माता उतना ही चले गये। विन्ध्यवासिनी ने अपने मन में अनुभव किया सास ग़रीब है और मैं भी ग़रीब हूँ। हम दोनों एक दुःख के बन्धन में पड़ी हुई हैं। माता-पिता अमीर हैं, उनक अवस्था और हमारी अवस्था में बड़ा अन्तर है। एक तो ग़री होने के कारण विन्ध्यवासिनी उनसे बहुत दूर है, उसके ऊप चोरी स्वीकार करके वह और भी बहुत नीचे गिर गई है कौन जाने, स्नेह के सम्बन्ध का बन्धन इतनी बड़ी विभिन्नत के बोझ को सह सकता है या नहीं।

अनाथबन्धु विलायत जाने पर पहले तो स्त्री को बराबर चिट्ठी लिखते रहे। किन्तु धीरे-धीरे चिट्ठियों का आना कम

हो चला और जो चिट्ठियाँ आती भी थीं उनमे अलक्षित भाव से एक प्रकार का घृणा का भाव भी झलकता था। अनाथ-बन्धु की अशिक्षिता, घर के काम-काज मे लगी रहनेवाली, स्त्री की अपेक्षा विद्या-बुद्धि और रूप-गुण मे अत्यन्त श्रेष्ठ अनेक अँगरेज़-कन्याएँ उनको सुयोग्य, सुबुद्धि और सुरूप कहकर उनका आदर करती थीं। ऐसी अवस्था मे अगर अनाथबन्धु अपनी धोती पहननेवाली, घूँघट काढ़े रहनेवाली, काली औरत को अपने योग्य न समझें तो कोई विचित्र बात नहीं।

किन्तु तो भी जब रुपये की कमी हुई तब इस बङ्गाली के लड़के को उसी औरत को तार देने मे कुछ भी सङ्कोच नहीं मालूम हुआ। और उस बङ्गाली औरत ने ही दोनो हाथो मे केवल चूड़ियाँ रखकर एक-एक करके सब गहने बेचकर स्वामी के पास रुपये भेजे। गाँव मे सुरक्षित स्थान न होने के कारण विन्ध्यवासिनी के सब क़ीमती ज़ेवर पिता के यहाँ ही रक्खे हुए थे। स्वामी की नातेदारी और परिवार मे काम-काज के अवसर पर जाने का बहाना करके विन्ध्यवासिनी ने अपने सब गहने मँगा लिये। अन्त को अपनी बनारसी साड़ी और दुशाला तक बेंचकर विन्ध्यवासिनी ने रुपये भेजे और बहुत अनुनय-विनय करके, आँसुओं से पत्र की हर एक लाइन भिगो-कर, पति को लिखा कि तुम घर लौट आओ।

अनाथबन्धु एलबर्ट फ़ैशन दाढ़ी रखाकर, कोट-पतलून पहन-कर, बैरिस्टरी पास करके लौट आये। आकर वे कलकत्ते

के एक होटल में ठहरे। पिता के घर में रहना असम्भव था, क्योंकि एक तो वहाँ बैरिस्टर साहब के रहने के लायक़ जगह नहीं थी, दूसरे उनके जाने से गाँव के लोग उनके भाइयों को जाति से च्युत कर देते। अनाथबन्धु के ससुर भी आचारनिष्ठ कट्टर हिन्दू थे, वे भी जातिच्युत को आश्रय नहीं दे सकते थे।

धन की कमी के कारण बहुत जल्द होटल छोड़कर एक किराये के घर मे रहना पड़ा। उस घर मे स्त्री को लाने के लिए वे तैयार न थे। विलायत से आने के बाद केवल दो-तीन घण्टे के लिए वे स्त्री और माता से मिलने गये थे। उसके बाद फिर उनसे मुलाक़ात नहीं की।

दोनों शोक से पीडित स्त्रियों के लिए केवल यही एक सान्त्वना थी कि अनाथबन्धु अपने देश में पास ही थे। साथ ही अनाथबन्धु की बैरिस्टरी की कीर्त्ति से उनके मन मे गर्व की सीमा नहीं रही। विन्ध्यवासिनी अपने को यशस्वी स्वामी के अयोग्य समझकर मन ही मन धिक्कार देने लगी। साथ ही अपने को अयोग्य समझकर उसको अपने स्वामी के गौरव का अधिक गर्व भी हुआ। वह दुःख से पीड़ित होने पर भी गर्व से फूली नहीं समाती थी। वह म्लेच्छाचार को घृणा करती थी, तो भी स्वामी को देखकर उसने अपने मन मे कहा—आजकल अनेक बङ्गाली साहबी पोशाक पहनते हैं, लेकिन वह पोशाक ऐसी किसी के नहीं खिलती! अनाथबन्धु तो पूरे विलायती साहब जान पडते हैं। कोई उनको बङ्गाली नहीं कह सकता।

जब घर का ख़र्च चलना कठिन हो गया तब अनाथबन्धु ने क्षोभ के साथ यह ठहराया कि पतित भारत मे गुण का आदर नही है और उनके हमपेशा लोग गुप्त रूप से डाह के मारे उनकी उन्नति और प्रसिद्धि के मार्ग मे बाधा डालते है। जब उनके खाने की टेबिल पर अण्डों के अभाव को साग-सब्जी पूर्ण करने लगी—भुने हुए मुर्गे के सम्मानकर स्थान पर झींगा मछली देख पड़ने लगी—वेश-भूषा, ठाट-बाट और चिकने मुख की गर्व से उज्ज्वल ज्योति फीकी पड चली—जब सुतीव्र निषाद से मिली हुई जीवन-तन्त्री धीरे-धीरे मध्यम की ओर उतर चली तब, उसी समय, राजकुमार बाबू के यहाँ एक भारी दुर्घटना हो जाने से अनाथबन्धु के जीवन का प्रवाह एकाएक दूसरी ओर फिर गया। राजकुमार बाबू का लड़का हरकुमार अपने मामा के घर से स्त्री और बालक-समेत घर की ओर आ रहा था। मामा का घर गङ्गा के किनारे पर एक गाँव मे था। नाव पर हरकुमार आ रहा था। एकाएक नाव उलट जाने से पुत्र-स्त्री-सहित हरकुमार की मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना के बाद विन्ध्यवासिनी के सिवा राजकुमार की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी और कोई नही रहा।

दारुण शोक कुछ शान्त होने पर राजकुमार ने अनाथबन्धु के पास जाकर बहुत कुछ अनुनय-विनय करके कहा—बेटा, तुमको प्रायश्चित्त करके जाति मे मिलना होगा। तुम्हारे सिवा अब मेरे कोई नहीं है।

अनाथबन्धु उत्साह के साथ इस बात पर राज़ी हो गये। उन्होंने मन मे सोचा, जो बार-लाइब्रेरियों मे पड़े रहनेवाले स्वदेशी बैरिस्टर उनसे डाह करते हैं और उनकी असामान्य प्रतिभा के प्रति यथेष्ट सम्मान नहीं दिखाते, उनसे इसी उपाय से बदला चुकाना होगा।

राजकुमार बाबू ने पण्डितों से व्यवस्था लिखाई। उन्होंने कहा—अनाथबन्धु ने अगर विलायत मे...मांस न खाया हो तो वे प्रायश्चित्त करके जाति मे लिये जा सकते हैं।

विदेश मे यद्यपि उक्त पशु का निषिद्ध मांस उनके प्रिय भोजनों मे था, तथापि उसके भोजन को अस्वीकार करने मे उन्हें कुछ भी सङ्कोच नहीं हुआ। अपने प्रिय मित्रों से अनाथ-बन्धु ने कहा—समाज जब अपनी इच्छा से झूठ बात सुनना चाहता है तब एक ज़रा सी बात कहकर उसे अपने अनुकूल बनाने में मुझे कुछ दोष नहीं देख पड़ता। जिस जिह्वा ने... मांस खाया है उसे गोबर और झूठ नाम के दो निन्दित पदार्थों द्वारा शुद्ध कर लेना हमारे नव्य समाज का नियम है। मैं उस नियम का उल्लंघन करना नहीं चाहता।

प्रायश्चित्त करके समाज मे मिलने के लिए एक शुभ दिन निश्चित हुआ। इसी बीच मे अनाथबन्धु ने केवल धोती ही नहीं पहनी, बल्कि तर्क और युक्तियों के द्वारा वे विलायती समाज के मुँह मे स्याही और हिन्दू-समाज के मुँह में चूना भी पोतने लगे। जिसने सुना, वही ख़ुश हो उठा।

आनन्द और गर्व से विन्ध्यवासिनी का प्रीति-सुधा-सिञ्चित कोमल हृदय उच्छ्वसित हो उठा। उसने मन में कहा—विलायत से जो आता है वह एकदम साहब बनकर आता है, किन्तु मेरे स्वामी बिलकुल विकारहीन भाव से लौट आये हैं। उनकी हिन्दू-धर्म पर भक्ति पहले से भी अब बढ़ गई है।

निर्दिष्ट मुहूर्त्त के दिन ब्राह्मण-पण्डितो से राजकुमार बाबू का घर भर गया। उनको खिलाने-पिलाने और बिदाई देने का ख़ूब गहरा प्रबन्ध किया गया था।

घर के भीतर ज़नाने मे भी धूमधाम की कमी न थी। निमन्त्रित नातेदार, इष्ट-मित्र और पास-परोसियों को खिलाने पिलाने और बिठाने-उठाने का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। उस कोलाहल और काम-काज की भीड़ के भीतर विन्ध्यवासिनी प्रसन्न मुख लिये, शरद ऋतु की धूप से उद्भासित प्रभातवायु-वाहित मेघ-खण्ड की तरह, आनन्द के आवेश मे इधर-उधर फिर रही थी। आज के दिन की संसार की सब घटनाओं का प्रधान नायक उसका स्वामी है। आज मानों सारी वङ्गभूमि एक रङ्गभूमि है और ड्राप सीन उठाकर केवल अनाथबन्धु को वह विस्मित विश्वासी दर्शको के आगे उपस्थित किये हुए है। प्रायश्चित्त अपराध का स्वीकार नही है। वह मानो लोगों पर अनुग्रह करना है। अनाथबन्धु विलायत से आकर हिन्दू-समाज मे प्रवेश कर हिन्दू-समाज को मानो गौरवशाली बना रहे हैं और उसी गौरव की छटा सारे देश से आकर विन्ध्यवासिनी

के मुख पर प्रतिफलित होकर, उसके प्रेम-प्रमुदित मुख के ऊपर, परम सुन्दर महिमा की ज्योति को चमका रही है। इतने दिन के तुच्छ जीवन का सारा दुःख और अपमान आज दूर हो गया है। आज विन्ध्यवासिनी अपने जन-परिपूर्ण पिता के घर में सब आत्मीय स्वजनों के आगे सिर ऊँचा करके गौरव के आसन पर अधिष्ठित हुई है। स्वामी के महत्त्व ने आज अयोग्य स्त्री को संसार के निकट सम्मान का पात्र बना दिया।

प्रायश्चित्त का कृत्य समाप्त हो गया। अनाथबन्धु समाज मे मिल गये। अभ्यागत आत्मीय, स्वजन और ब्राह्मणों ने अनाथबन्धु के साथ बैठकर भर पेट भोजन किया।

आत्मीय स्त्रियो ने दामाद को देखने के लिए भीतर ज़नाने मे बुला भेजा। अनाथबन्धु मज़े मे पान चबाते-चबाते, प्रसन्न हँसता हुआ चेहरा लिये, ज़मीन तक लटकती हुई चादर लिथारते हुए भीतर गए।

भोजन के बाद ब्राह्मणो को दक्षिणा देने का प्रबन्ध हो रहा था और ब्राह्मण लोग सभा मे बैठे तुमुल कलह के साथ अपना-अपना पाण्डित्य प्रकट कर रहे थे। वृद्ध राजकुमार बाबू क्षण भर विश्राम करने की नीयत से उस सभा के बीच मे बैठे हुए स्मृतियों के सम्बन्ध मे तर्क-वितर्क सुन रहे थे। इसी समय दरबान ने आकर उनके हाथ मे एक विज़िटिग कार्ड दिया और कहा—एक मेम साहब आई हैं।

राजकुमार बाबू चौंक उठे। उसके बाद कार्ड में देखा। उसमे अँगरेज़ी मे लिखा हुआ था—मिसेज अनाथबन्धु सरकार—अर्थात् अनाथबन्धु सरकार की स्त्री।

राजकुमार बाबू बहुत देर तक निहारते रहकर भी इन कई अक्षरो के शब्दो का ठीक-ठीक मतलब न समझ सके। इसी समय विलायत से शीघ्र ही आई हुई, लाल-लाल गालोवाली, भूरे बालोवाली, कंजी आँखोंवाली, दूध के समान गोरे रङ्गवाली, हरिण के समान चाल चलनेवाली एक अँगरेज़ रमणी उस सभा के बीच आकर खडी हो गई और हर एक के मुँह को गौर से निहारने लगी, किन्तु उसे अपना परिचित प्रिय मुखड़ा न देख पड़ा। अकस्मात् मेम को देखकर स्मृति-संहिताओं के तर्क जहाँ के तहाँ पडे रह गये। सभा मे मसान का सा गहरा सन्नाटा छा गया।

इसी समय चादर के छोर से ज़मीन बहारते हुए अनाथबन्धु फिर रङ्गभूमि मे आकर उपस्थित हुए। उसी दम वह अँगरेज़ रमणी दौड़कर उनके पास आई, उनसे लिपटकर उनके ताम्बूल-रञ्जित ओठ मे उसने एक स्त्री-पुरुष के मिलन का चिह्न—चुम्बन—अङ्कित कर दिया।

उस दिन सभा मे स्मृति-संहिताओ के सम्बन्ध मे फिर कोई तर्क नही उठा।

सुभा

(१)

लड़की का नाम जब सुभाषिणी रक्खा गया था तब कौन जानता था कि वह गूँगी होगी ? उसकी दो बडी बहनों का नाम सुकेशिनी और सुहासिनी रक्खा गया था। इसी से उसी अनुप्रास पर पिता ने छोटी लडकी का नाम सुभाषिणी रक्खा। इस समय सब उसे संक्षेप मे सुभा कहते हैं।

बङ्गालियों के यहाँ के दस्तूर के मुताबिक़ बहुत खोजकर और बहुत से रुपये ख़र्च करके दोनों बड़ी लकड़ियों का व्याह हो गया। किन्तु छोटी लड़की सुभा, माता-पिता के नीरव हृदय-भाव की तरह, घर मे मौजूद थी।

वह कुछ बोलती नहीं, और कुछ अनुभव करती है, यह भी किसी को जान नहीं पड़ता। इस कारण उसके सामने ही उसके भविष्य के सम्बन्ध मे सब लोग दुश्चिन्ता प्रकट करते थे। इस बात को वह लड़की लड़कपन से ही समझ गई थी कि वह विधाता के अभिशाप की मूर्त्ति बनकर अपने पिता के यहाँ उत्पन्न हुई है। उसका फल यह हुआ कि वह सर्वदा अपने को सर्व-साधारण की दृष्टि से छिपाकर रखना चाहती थी। समझती थी कि मुझे सब लोग भूल जायँ तो अच्छा।

किन्तु वेदना को कोई कहा भूलता है ? पिता-माता के हृदय मे वह सदा खटका करती थी।

ख़ासकर सुभा की मा उसे अपनी ही एक त्रुटि समझती थी। कारण, पुत्र की अपेक्षा कन्या को माता अपना अंश समझती है। कन्या मे कोई असम्पूर्णता—कमी—होती है तो माता उसे विशेष रूप से अपनी लज्जा का कारण समझती है। बल्कि कन्या के पिता वाणीकण्ठ महाशय सुभा को अपनी अन्य कन्याओ की अपेक्षा अधिक प्यार करते थे। किन्तु माता उसे अपने गर्भ का कलङ्क समझकर उसके प्रति बहुत ही प्रतिकूल थी।

सुभा बोल नही सकती थी, किन्तु उसके बदले उसके बडी-बड़ी पलकों से शोभित बडी बड़ी आँखें थीं—और उसके दोनो ओठ भाव के आभासमात्र से नव पल्लव के समान हिल उठते थे।

शब्दों से हम जो भाव प्रकट करते हैं वह अधिकांश हमें अपनी चेष्टा से गढ़ लेना होता है—वह कुछ-कुछ तर्जुमा करने के समान है। वह तर्जुमा अक्सर ठीक नही होता। क्षमता के अभाव से अक्सर उसमे भूल हो जाती है। किन्तु उज्ज्वल-कृष्ण बडी-बडी आंखों का तर्जुमा करना नहीं पडता—मन आप ही उनके ऊपर छाया डालता है, भाव आप ही उनके ऊपर कभी खुलता है, कभी मुँदता है, कभी भासित हो उठता है, कभी बुझ जाता है, कभी अस्त हो रहे चन्द्रमा के समान एकटक ताकता है और कभी द्रुतचञ्चल बिजली की तरह दसों

दिशाओं मे टकराने लगता है। मुख के भाव के सिवा जन्म से ही जिसके अन्य भाषा नहीं है उसकी नेत्रो की भाषा असीम उदार और पाताल की तरह गम्भीर होती है। वह स्वच्छ आकाश की तरह उदय-अस्त और छाया तथा प्रकाश की निस्तब्ध रङ्गभूमि होती है। ऐसे वाक्यहीन मनुष्यों मे बृहत् "प्रकृति" के समान एक निर्जन महत्त्व होता है। इसी कारण साधारण बालक-बालिकाएँ सुभा को एक प्रकार के भय की दृष्टि से देखते थे, उसके साथ खेलते न थे। वह सून-सान दुपहर की तरह शब्दहीन और संगियों से हीन थी।

(२)

उस गाँव का नाम चडीपुर था। गाँव की नदी बङ्गाल की छोटी नदियों मे से थी—गृहस्थ के घर की औरत के समान थी। बहुत दूर तक उसका फैलाव न था। आलस्य-हीन कृशकाय नदी अपने कूल की रक्षा करती हुई अपना काम करती चली जाती है। दोनों किनारे के गाँवो के साथ उसका मानो एक-न-एक सम्बन्ध अवश्य है। दोनो किनारों पर बस्ती थी। किनारे ऊँचे थे और उन पर घने पेड़ों की छाया विराजमान थी। नीचे ग्रामलक्ष्मी के समान वह नदी आत्म-विस्मृत भाव से, प्रफुल्ल हृदय से शीघ्रगामिनी होकर असंख्य कल्याण-कार्य्य करती बह रही थी।

वाणीकण्ठ का घर बिलकुल नदी के किनारे पर ही था। उनका घर, हाता, गोशाला, फूस का ढेर, इमली का पेड़ और

केले का बाग़ हर एक नाव पर आने-जानेवाले मनुष्य की दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नही रहता था। इस गृहस्थी की टीमटाम के भीतर वह गूँगी लड़की भी किसी की दृष्टि मे पड़ती थी या नही सो तो नही मालूम, किन्तु वह जब काम-काज से छुट्टी पाती थी तब उसी नदी के किनारे आकर बैठती थी।

प्रकृति माना उसके अभाव को पूर्ण कर देती है। वह माना सुभा की ओर से बातें करती है। नदी की कलध्वनि, लोगों का कोलाहल, माँझियों का गाना, पक्षियों की बोली, वृक्षों के पत्तो का मर्मर शब्द, सब मिलकर, चारो ओर के चलने-फिरने और आन्दोलन-कम्पन के साथ एक होकर, समुद्र की लहरों के समान, बालिका के चिर-निःस्तब्ध हृदय-उपकूल के निकट आकर मानो हिलोरे लेता है। प्रकृति के ये विविध शब्द और विचित्र गतियाँ भी गूँगे की भाषा हैं- बड़ी-बड़ी आँखोवाली सुभा की जो भाषा है उसी का यह एक विश्वव्यापी विस्तार है। झिल्ली-झङ्कार-मय तृण-पूर्ण भूमि से लेकर शब्दातीत नक्षत्र-लोक तक केवल इङ्गित, अङ्गभङ्गी, सङ्गीत, क्रन्दन और दीर्घ निःश्वास ही है।

दोपहर को जब माँझी और मल्लाह खाना खाने जाते थे, गृहस्थ लोग सोते थे, पक्षी चुप हो रहते थे, नावो का चलना बन्द हो जाता था, जन-पूर्ण जगत काम-काज के बीच मे सहसा थमकर भयानक निर्जन-मूर्त्ति धारण करता था तब कड़ी

धूप से प्रकाशित महत् आकाश के नीचे केवल गूँगी प्रकृति (Nature) और गूँगी लड़की सुभा दोनों आमने-सामने चुपचाप बैठे-बैठे एक दूसरे को निहारा करती थीं। प्रकृति फैली हुई धूप मे, और सुभा छोटे-छोटे पेड़ों की छाँह में रहती थी।

सुभा के कुछ अन्तरङ्ग मित्र भी थे। उसकी सखी दो गउएँ थीं। एक का नाम श्यामा और दूसरी का कल्याणी था। बालिका सुभा के मुख से उन गउओं ने अपने ये नाम कभी सुने न थे; किन्तु वे उसके पैरों की आहट को पहचानती थीं। सुभा के पैरों की आहट में भी एक वाक्य-हीन करुण स्वर था। गउएँ उसके मर्म को भाषा की अपेक्षा सहज में ही समझ लेती थीं। सुभा कभी उनको दुलराती थी, कभी झिड़कती थी और कभी अनुनय-विनय का भाव दिखाती थी। दोनों गउएँ इन बातों को मनुष्य की अपेक्षा बहुत अच्छी तरह समझती थीं।

इनके सिवा सुभा के मित्रों में एक बकरी और एक बिल्ली भी थी। किन्तु उनके साथ सुभा की ऐसी गहरी और बराबर की दोस्ती न थी। तो भी वे सुभा के बहुत ही अनुगत थीं। बिल्ली जब दिन और रात को कभी-कभी सुभा की गोद में बैठकर सुख की नींद की तैयारी करती थी और सुभा उसकी गर्दन और पीठ में कोमल हाथ फेरती थी तब वह बिल्ली भी ऐसा भाव प्रकट करती थी कि उससे उसकी सुख की नींद में विशेष सहायता पहुँचती है।

उन्नत श्रेणी के जीवों में सुभा को और भी एक साथी मिल गया था। किन्तु यह ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है कि सुभा के साथ उसका कैसा सम्बन्ध था। क्योंकि वह भाषाविशिष्ट जीव था और इसी कारण दोनों की भाषा एक प्रकार की न थी।

वह था गोसाईं जी का छोटा लड़का प्रतापचन्द्र। प्रतापचन्द्र कोई काम-काज न करता था। बहुत चेष्टा करने के बाद माता-पिता ने यह आशा छोड़ दी थी कि प्रताप कुछ काम-काज करके अपनी और अपनी गृहस्थी की उन्नति करेगा। अकर्मण्य लोगों के लिए एक सुभीता यह है कि आत्मीय लोग तो उनसे नाराज़ होते हैं, लेकिन ग़ैर लोगों के वे प्रिय-पात्र हो जाते हैं। क्योंकि किसी काम में लगे न रहने के कारण वे सरकारी आदमी हो जाते हैं। शहरों में जैसे दो-एक गृह-संपर्कहीन सरकारी बाग़ों का रहना आवश्यक है वैसे ही देहातों में दो-चार अकर्मण्य सरकारी लोगों के रहने की विशेष आवश्यकता होती है। काम-काज, आमोद-प्रमोद आदि में जहाँ एक आदमी कम पड़ता है वहीं वे पास ही अनायास मिल जाते हैं।

प्रतापचन्द्र को सबसे बढ़कर काँटा फेंककर मछली पकड़ने का शौक था। इस काम में सहज ही बहुत सा समय बीत जाता है। तीसरे पहर नदी के किनारे प्रतापचन्द्र सदा

इसी काम में लगा हुआ देख पड़ता था। इसी अवसर मे अक्सर सुभा से उसकी मुलाक़ात हो जाया करती थी। प्रताप की आदत थी कि वह चाहे जो काम करता हो, एक साथी की उसे आवश्यकता रहती थी। बिना साथी के वह कोई भी काम नहीं कर सकता था। मछली पकड़ने के समय वाक्यहीन साथी ही सबसे अच्छा होता है। इसी कारण प्रताप सुभा की मर्यादा को समझता था। प्रताप और भी अधिक आदर करके सुभा को केवल 'सु' कहा करता था।

सुभा इमली के पेड़ के नीचे बैठी रहती थी और प्रताप, पास ही, पानी मे काँटा डालकर उधर ही देखा करता था। प्रताप को सुभा नित्य एक पान का बीड़ा घर से लाकर देती थी। जान पड़ता है, बहुत देर तक बैठे-बैठे ताक-ताककर सुभा अपने मन में इच्छा करती थी कि वह प्रताप की कोई विशेष सहायता कर सकती, उसके किसी काम मे लग सकती या किसी तरह यह जता दे सकती कि इस पृथ्वी पर वह भी कम काम की चीज़ नहीं है तो बहुत अच्छा होता। किन्तु इसमे से वह कुछ भी नही कर सकती थी। वह मन ही मन विधाता से अलौकिक क्षमता की प्रार्थना करती थी—मन्त्र के बल से सहसा ऐसा विचित्र कार्य कर दिखाना चाहती थी कि उसे देखकर प्रताप के विस्मय का ठिकाना न रहता और वह कहता कि वाह, 'सु' मे इतनी क्षमता भरी पड़ी है, यह तो मुझे मालूम ही न था।

मान लो, सुभा अगर जलकुमारी होती; धीरे-धीरे जल से ऊपर उठकर एक नागमणि घाट पर रख जाती, प्रताप तुच्छ मछली पकड़ने के कार्य को छोड़कर उस मणि को लेकर जल मे गोता लगाता और पाताल मे जाकर देखता, चाँदी के महल मे सोने के पलँग पर—कौन बैठा है?—वही वाणी-कण्ठ की गूँगी लड़की सुभा। सुभा उसी मणिदीप्त गम्भीर निःस्तब्ध पातालपुरी की एकमात्र राजकन्या है। यह क्या हो नही सकता था, यह क्या ऐसी ही असम्भव बात है! असल मे असम्भव कुछ भी नहीं है। किन्तु तो भी सुभा प्रजाशून्य पाताल के राजवंश मे उत्पन्न न होकर वाणीकण्ठ के घर मे पैदा हुई है और गोसाईं के लड़के प्रताप को किसी तरह आश्चर्य मे नही डाल सकती।

(४)

सुभा की अवस्था धीरे-धीरे बढ़ती जाती थी। क्रमशः वह मानो अपनी अवस्था के परिवर्त्तन का अनुभव करने लगी। जैसे किसी पूर्णिमा को किसी समुद्र से एक ज्वार का प्रवाह आकर सुभा के अन्तरात्मा को एक नवीन अनिर्वचनीय चेतना शक्ति से परिपूर्ण कर रहा था। वह आप अपने को देखती, सोचती और प्रश्न करती थी, किन्तु उसकी समझ मे कुछ भी नही आता था।

पूर्णिमा की रात्रि को एक दिन धीरे-धीरे शयन-गृह के द्वार को खोलकर, डरते-डरते मुँह निकालकर, सुभा ने बाहर

की ओर देखा। देखा, जवानी के रहस्य मे, पुलक और विषाद मे, असीम निर्जनता की एकदम शेष सीमा तक, यहाँ तक कि उसे भी नाँघकर पूर्णिमा की "प्रकृति" भी परिपूर्ण हो रही है—किन्तु मुख से एक बात भी नही कह सकती। निःस्तब्ध व्याकुल प्रकृति के एक प्रान्त मे एक व्याकुल बालिका चुपचाप खड़ी हुई थी।

इधर कन्या की अवस्था देखकर माता-पिता की चिन्ता भी दिन-दिन बढ़ने लगी। लोगों ने भी निन्दा करना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि लोगों मे वाणीकण्ठ को जातिच्युत कर देने की चर्चा भी चलने लगी। वाणीकण्ठ की अवस्था अच्छी है, खाने-पीने-पहनने की भी कमी नहीं है। इसी लिए उनके शत्रु भी अनेक थे।

एक दिन स्त्री और पुरुष मे इस बारे मे बहुत बातचीत हुई। कुछ दिनों के लिए वर की खोज मे वाणीकण्ठ को विदेश जाना पड़ा।

अन्त को वहाँ से लौट आकर वाणीकण्ठ ने स्त्री से कहा—चलो, कलकत्ते चलो।

विदेश-यात्रा का उद्योग होने लगा। कुहासे से ढके हुए प्रातःकाल की तरह सुभा का हृदय अश्रुवाष्प से एकदम भर गया। एक अनिर्दिष्ट आशङ्का के मारे वह कुछ दिन से बराबर वाक्य-हीन जन्तु की तरह माता-पिता के पास ही रहा करती थी—दोनों बड़ी-बड़ी आँखों से उनकी ओर ताककर

वह मानो कुछ समझने की चेष्टा करती थी; किन्तु वे कुछ समझाकर न कहते थे।

इसी बीच में एक दिन तीसरे पहर पानी में काँटा डालकर प्रताप ने हँसते हुए कहा—क्योंरी सुभा, तेरा दुलहा मिल गया है, तू ब्याह करने जाती है? देख, हम लोगों को न भूलना। यह कहकर उसने फिर मछली पकड़ने की ओर मन लगाया।

मर्मविद्ध हरिणी जैसे शिकारी की ओर ताकती है, चुपचाप कहती है कि मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया था, वैसे ही सुभा ने भी प्रताप की ओर देखा। उस दिन वह इमली के पेड़ के नीचे नहीं बैठी। वाणीकण्ठ शयन-गृह से उठकर तमाखू पी रहे थे। सुभा उनके पैरों के पास बैठकर उनके मुँह की ओर ताककर रोने लगी। अन्त को उसे सान्त्वना देने में वाणीकण्ठ के भी आँसू निकल आये।

कल कलकत्ते की यात्रा का दिन है। सुभा गोशाला में अपनी बाल्य-सखी गउओं से बिदा होने के लिए गई। उनको अपने हाथ से खिलाकर, उनके गले में हाथ डालकर, आँखों से यथाशक्ति अपने मन का भाव व्यक्त करती हुई सुभा उनकी ओर ताकती रही। दोनों नेत्रों से टप-टप करके आँसू गिरने लगे।

उस दिन शुक्लपक्ष की द्वादशी की रात थी। सुभा शयन-गृह से बाहर निकलकर उसी चिरपरिचित नदी-तट पर जाकर घास पर लोटने लगी। मानो धरणी को, इस महती मूक

मानव-माता को, दोनो हाथों से लिपटाकर वह यह कहना चाहती थी कि तुम माता मुझे जाने न दो, मेरी तरह दोनों हाथ फैलाकर तुम भी मुझे लिपटा रक्खो।

कलकत्ते के डेरे मे एक दिन सुभा की माता ने सुभा का ख़ूब शृङ्गार किया। बालों मे तेल डालकर चोटी बाँधी, ख़ूब गहने पहनाये। उसके स्वाभाविक सौन्दर्य को यथाशक्ति सज-धज मे छिपा-सा दिया। सुभा की दोनों आँखो से आँसू बह रहे थे। आँखें फूलकर ख़राब न हो जायँ, इसलिए माता ने उसे झिड़का भी, किन्तु आँसुओं ने उस झिड़की का कुछ भी ख़याल नहीं किया।

मित्र के साथ वर ख़ुद कन्या को देखने आया। कन्या के पिता चिन्तित, शङ्कित और व्यग्र होकर उठ खड़े हुए। मानों देवता ख़ुद अपनी बलि के पशु को पसन्द करने आया हो। माता ने भीतर बहुत कुछ डाँट-डपटकर बालिका के अश्रु-प्रवाह को और भी बढ़ाकर उसे परीक्षक के सामने भेज दिया।

परीक्षक ने बहुत देर तक देखकर कहा—बुरी नहीं है।

ख़ासकर बालिका के रोने को देखकर वर ने समझा कि इसमे सहृदयता भी है और माता-पिता के बिछुड़ने की आशङ्का से सहृदय बालिका का हृदय व्यथित हो उठा है। वह हृदय ब्याह के बाद मेरा ही होगा। सीप के मोती के समान बालिका के आँसुओं ने उसका मूल्य चढ़ा दिया।

पत्रा देखकर एक शुभ मुहूर्त्त निश्चित हुआ और उस दिन उसी वर के साथ सुभा का ब्याह हो गया।

गूँगी लड़की दूसरे को सौंपकर माता-पिता अपने गाँव चल दिये। उनकी जाति भी बची और धर्म भी बच गया।

वर युक्तप्रान्त मे नौकर था। ब्याह के बाद ही वह सुभा को अपने साथ वहाँ ले गया। एक सप्ताह के भीतर ही उसे मालूम हो गया कि स्त्री गूँगी है। किन्तु ब्याह के पहले इस बात के न समझने का दोष वर का ही था। सुभा ने धोखा नही दिया था। उसकी दोनो आँखें ने सब खुलासा करके कह दिया था, किन्तु वर उसे समझ नही सका। वह चारों ओर ताकती थी, पर मन का भाव व्यक्त करने की भाषा उसके पास न थी, वह क्या करती।

बालिका के चिर-नीरव हृदय मे माता-पिता और पितृ-गृह के वियोग की व्यथा किसी दुखिया के करुण विलाप की तरह गूँजने लगी। अन्तर्यामी के सिवा उस व्यथा को कोई नहीं समझ सकता था।

अबकी बार सुभा का स्वामी, आँखें और कानो के द्वारा, अच्छी तरह जाँच करके एक दूसरी स्त्री ब्याह लाया।

विचारक

(१)

अनेक अवस्थाएँ बदलने के उपरांत अन्त को गतयौवना चुन्नो ने जिस पुरुष का आश्रय ग्रहण किया था वह भी जब उसे फटे कपड़े की तरह छोड़ गया तब मुट्ठी भर अन्न के लिए दूसरे आश्रय को खोजने की चेष्टा करने मे उसे अत्यन्त धिक्कार मालूम पड़ा।

जवानी के अन्त मे शुभ्र शरद् ऋतु की तरह एक गम्भीर प्रशान्त बहुत ही सुन्दर अवस्था आती है जब जीवन का फल फलने और "फ़सल" पकने का समय आता है। उस समय वसन्त के समान भरी जवानी की चञ्चलता नहीं सोहती। इतने दिनों में घर के सँभालने का काम समाप्त हो जाता है। अनेक भलाई-बुराई, सुख-दुःख जीवन में परिपाक को प्राप्त होकर भीतर के आत्मा को परिणत अवस्था मे पहुँचा देते हैं। उस समय नवीन प्रणय की मुग्ध-दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट करने की फिर प्रवृत्ति नहीं होती—किन्तु पुराना साथी और भी प्यारा हो उठता है। उस समय जवानी का सौन्दर्य धीरे-धीरे शिथिल हो आता है, किन्तु वृद्धावस्था से रहित अन्तः-प्रकृति बहुत काल के सहवास से मुख और नेत्रों मे मानो बहुत अच्छी तरह अङ्कित हो जाती है। जो कुछ मिला नहीं उसकी आशा छोड़कर, जो छोड़ गये हैं उनके लिए शोक समाप्त

करके, जिन्होंने धोखा दिया है उनको क्षमा करके, जो पास आये हैं—जिन्होने प्यार किया है—उनको हृदय से लगाकर, सुनिश्चित सुपरीचित चिर-परिचित लोगों के स्नेह के घेरे के भीतर निरापद स्थान बनाकर उसी के भीतर सब चेष्टाओं का अन्त होता है और सब आकांक्षाओं की तृप्ति होती है। जवानी के उस स्निग्ध सायङ्काल मे, जीवन के उस शान्तिपर्व मे भी जिसे नये सिरे से सञ्चय, नवीन परिचय और नवीन बन्धन के वृथा आश्वास मे नवीन चेष्टा के लिए दौडना पड़ता है—उस समय भी जिसके लिए विश्राम की शय्या नहीं बिछी—उससे बढकर शोचनीय ससार मे और कोई नहीं है।

चुन्नी ने अपनी जवानी के सायङ्काल मे एक दिन सवेरे उठकर देखा कि उसका प्रणयी रात को उसका सञ्चित धन और गहने लेकर भाग गया है—घर का किराया देने के लिए भी एक पैसा नहीं छोडा—तीन वर्ष के बच्चे को दूध लाकर पिलाने का भी ठिकाना नहीं रहा। जब चुन्नी ने सोचकर देखा कि अपने जीवन के अडतीस वर्षों मे वह एक आदमी को भी अपना नहीं कर सकी—एक घर के कोने में भी मरने-जीने के लिए ठिकाना नहीं कर सकी—जब उसे देख पडा कि आज फिर आँसू पोछकर दोनो आँखों मे अञ्जन लगाना होगा, ओठों मे पान की धडी जमाकर और दांतो में मिस्सी लगाकर जीर्ण यौवन को तेल-पानी की चुपड़ से चमकाकर बाज़ार मे बैठना होगा, हँसते-हँसते असीम धैर्य के साथ नवीन हृदय

हरने के लिए नया जाल फैलाना होगा—तब वह घर के किवाड़े बन्द कर, पृथ्वी पर लोटकर, बार-बार ज़मीन पर अपना सिर पटकने लगी। दिन भर बिना कुछ खाये-पिये मुर्दे की तरह पड़ी रही! शाम हो आई। दीपक-हीन घर के कोने मे अन्धकार घना हो आया। एकाएक एक पुराना प्रणयी आकर चुन्नी-चुन्नी कहकर दर्वाज़ा पीटने लगा। चुन्नी अकस्मात् द्वार खोलकर झाड़ू हाथ मे लिये बाघिन की तरह गरजकर दौड़ी। रसपिपासु युवक शीघ्र ही अपनी जान लेकर भाग गया।

चुन्नी का बच्चा भूख के मारे रो-रोकर खाट के नीचे सो गया था। वह इस गोलमाल मे जाग पड़ा और अन्धकार के भीतर मा, मा, कहकर रोने लगा।

तब चुन्नी उस रो रहे बालक को प्राणपण से छाती में चिमटाकर, बिजली की तरह दौड़कर, पास के एक कुएँ मे कूद पड़ी।

शब्द सुनकर, प्रकाश हाथ में लिये, परोसी लोग कुएँ के पास आ गये। चुन्नी और उसका बचा निकाल लिया गया। चुन्नी उस समय बेहोश थी और लड़का मर चुका था।

अस्पताल में जाकर चुन्नी आराम हो गई। हत्या के अपराध मे मजिस्ट्रेट ने उसको सेशन सुपुर्द कर दिया।

(२)

सेशनजज स्टेच्युटरी सिविलियन मनोहरनाथ थे। उनके कठिन विचार से चुन्नी को फाँसी की सज़ा हुई। अभागिनी

की अवस्था पर ख़याल करके वकीलों ने उसे बचाने के लिए बहुत चेष्टा की, किन्तु कुछ फल न हुआ।

फल न होने का एक कारण था। मनोहरनाथ एक ओर हिन्दू महिलाओं को देवी कहते हैं, दूसरी ओर स्त्री-जाति के प्रति उन्हें आन्तरिक अविश्वास है। उनका मत यह है कि रमणियाँ कुल के बन्धन को तोड़ने के लिए सदा तैयार रहती हैं; शासन तनिक शिथिल होने पर समाज के पिँजड़े में एक भी कुल नारी नहीं दिखाई पड़ सकती।

उनके ऐसे विश्वास का एक कारण भी है। वह कारण जानने के लिए मनोहरनाथ की जवानी का इतिहास जानना परम आवश्यक है।

मनोहरनाथ जब कालेज में सेकिंड ईयर में पढ़ते थे तब आकार में और आचार में उनका दूसरा ही ढँग था। इस समय मनोहरनाथ के चोटी है और वे नित्य अपने हाथ से अपनी हजामत बनाकर सफाई का परिचय दिया करते हैं। किन्तु उस समय सोने का चश्मा, फ़ैशनेबुल दाढ़ी और साहबी ढँग के बाल उनके मुख की शोभा बढ़ाते थे। उस समय सज-धज पर विशेष दृष्टि थी, मद्य-मांस से अरुचि न थी और इसी के साथ की एक-आध लत और भी थी।

उनके घर के पास ही और एक गृहस्थ रहते थे। उनके चमेली नाम की एक विधवा लडकी थी। उसकी अवस्था चौदह-पन्द्रह वर्ष से अधिक न होगी।

समुद्र के भीतर से, वृक्षपंक्ति से श्यामल तट-भूमि जैसे रमणीय स्वप्न के समान, चित्र के समान जान पड़ती है वैसे किनारे पर पहुँचने से नहीं। वैधव्य के घेरे की आड़ से चमेली संसार से जितना दूर हो गई थी उसी दूरी के अलगाव के कारण उसे संसार, पर-पारवर्त्ती परम रहस्यमय, प्रमोद-वन के समान जान पड़ता था। वह नहीं जानती थी कि इस जगत्‌यन्त्र के कल-पुर्ज़े बहुत ही जटिल हैं और लोहे के समान ही कठिन हैं। वे सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति, संशय-सङ्कट, निराशा और परिताप से ढले हुए हैं। उसे जान पड़ता था कि संसार मे चलना कल-नादिनी नदी के स्वच्छ जल-प्रवाह की तरह सहज है—सामने की पृथ्वी के सभी मार्ग प्रशस्त और सरल हैं। सुख केवल उसके घर के द्वार के बाहर है और तृप्तिहीन आकांक्षा केवल उसके धड़क रहे परिताप-पूर्ण कोमल हृदय के भीतर है। विशेष करके उस समय उसके अन्तर्गगन के दूर दिगन्त से एक जवानी की हवा ने उच्छ्वसित होकर सम्पूर्ण विश्व को विचित्र वसन्त की शोभा से विभूषित कर दिया था। सारा नील आकाश मानों उसी के हृदय की हिलोरों से पूर्ण हो गया था और पृथ्वी मानों उसी के सुगन्ध-मर्मकोष के चारों ओर रक्त कमल की कोमल पँखड़ियों के समान तह की तह विकसित हो रही थी।

घर मे उसके माता-पिता और दो छोटे भाइयों के सिवा और कोई न था। दोनों भाई सबेरे खा-पीकर स्कूल चले जाते और स्कूल से आकर भोजन करने के बाद रात को नाइट स्कूल

मे पाठाभ्यास करने के लिए जाते थे। बाप को थोडी सी तनख़्वाह मिलती थी, घर मे मास्टर बुलाने की सामर्थ्य न थी।

काम-काज से फ़ुर्सत मिलने पर चमेली अपने कमरे की खिड़की पर आकर बैठती थी। बैठे-बैठे सड़क पर लोगों का जाना-आना देखा करती थी। फेरी लगाकर सौदा बेचनेवाले तरह-तरह से आवाज लगाते चले जाते थे। उसको सुनकर वह समझती थी कि फेरीवाले, राहगीर और फ़क़ीर भी सुखी हैं।

सवेरे और तीसरे पहर, शाम को ख़ूब सज-धज किये, गर्व से छाती फुलाये मनोहरनाथ भी उसकी नज़रों के सामने से गुज़रते थे। उसको जान पड़ता था, इस उन्नत-मस्तक सुवेश सुन्दर युवक के सब कुछ है, और इसको सब कुछ दिया जा सकता है। बालिकाएँ जैसे गुड़िया को सजीव मनुष्य मानकर खेलती हैं उसी तरह विधवा चमेली मनोहर को, मन ही मन सब प्रकार की महिमा से मण्डित करके, देवता समझकर खेलती थी।

कभी-कभी शाम को वह देखती थी कि मनोहरनाथ के घर मे ख़ूब रोशनी हो रही है, नाचने-गानेवालो के घुँघरुओ का और गाने का शब्द गूँज रहा है। उस दिन वह मनोहरनाथ की दीवार पर प्रतिफलित होनेवाली चञ्चल परछाहियो की ओर लुब्ध दृष्टि से ताकती हुई बैठे ही बैठे रात बिता देती थी। उसका व्यथित पीडित हृत्पिण्ड, पिँजड़े के पत्नी की तरह, हृदय-पिञ्जर के ऊपर दुर्दान्त आवेग से आघात किया करता था।

वह क्या अपने गढ़े हुए देवता को विलास में लिप्त रहने के कारण अपने मन मे झिड़कती थी या निन्दा करती थी? नहीं, अग्नि जैसे पतङ्ग को नक्षत्र-लोक का प्रलोभन दिखाकर अपनी ओर खींचता है वैसे ही मनोहरनाथ का वह प्रकाशित, गाने-बजाने से गूँज रहा, प्रमोद-मदिरा के उच्छ्वास से पूर्ण घर चमेली को स्वर्ग-मरीचिका दिखाकर अपनी ओर आकृष्ट किया करता था। वह अधिक रात को अकेली बैठी-बैठी उस घर के प्रकाश-छाया-सङ्गीत और अपने मन की आकांक्षा और कल्पना के द्वारा एक माया का जगत् गढ़ती थी और अपनी मानस-पुत्तलिका को उसी मायापुरी के बीच में बिठाकर विस्मित विमुग्ध दृष्टि से निहारती थी और अपने जीवन-यौवन, सुख-दुःख, इहकाल-परकाल आदि सर्वस्व को वासना की आग मे धूप की तरह जलाकर उस निर्जन सुनसान घर मे मनोहरनाथ की पूजा किया करती थी। वह नहीं जानती थी कि उसके सामने के उस घर के भीतर—उस तरङ्गित प्रमोद-प्रवाह के बीच—एक अत्यन्त क्लान्ति, ग्लानि, पङ्किलता, वीभत्स क्षुधा और प्राणक्षय-कर दाह है। विधवा को दूर से यह नहीं देख पड़ता था कि उस निद्राहीन रात्रि के प्रकाश के भीतर एक हृदयहीन निष्ठुरता की कुटिल हँसी प्रलय की क्रीड़ा किया करती है।

चमेली अपने सुनसान कमरे की खिड़की मे बैठकर उस मायामय स्वर्ग और कल्पित देवता को लेकर अपनी सारी ज़िन्दगी इसी प्रकार के स्वप्न के आवेश मे बिता दे सकती थी। किन्तु उसके

दुर्भाग्य से देवता ने कृपा की और वह स्वर्ग निकटवर्त्ती होने लगा। स्वर्ग ने जब एकदम आकर पृथ्वी को स्पर्श किया तब स्वर्ग भी नष्ट हो गया और जिस व्यक्ति ने अकेले बैठकर स्वर्ग की कल्पना की थी वह भी नष्ट होकर मिट्टी मे मिल गया।

इस विधवा पर कब मनोहरनाथ की लुब्ध दृष्टि पडी, कब उसको विनोदचन्द्र नाम से मिथ्या हस्ताक्षर करके चिट्ठी लिखकर मनोहरनाथ ने अन्त को शङ्का-पूर्ण, उत्कण्ठा-पूर्ण अशुद्ध लिखा हुआ हृदय के उच्छ्वास और आवेग से भरा पत्र पाया; उसके बाद कुछ दिन घात-प्रतिघात, उल्लास-सङ्कोच, आशा और आशङ्का मे किस तरह बीते; उसके बाद प्रलय-सदृश भयानक सुख की उन्मत्त अवस्था मे सारा जगत् विधवा की दृष्टि के आगे कैसे-कैसे प्रलोभन लेकर आने लगा और उसी अवस्था मे वह विधवा संसार को किस तरह भूल गई—उसके बाद अकस्मात् एक दिन वह विधवा उस ससार से किस तरह अलग होकर दूर चली गई, इसका विस्तृत विवरण लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

एक दिन, आधी रात के समय, माता-पिता, भाई और घर छोडकर चमेली विनोदचन्द्र नामधारी मनोहरनाथ के साथ एक गाड़ी मे सवार हो गई। देव-प्रतिमा जब उसके पास आकर बैठी तब लज्जा और धिक्कार के मारे चमेली मर सी गई।

अन्त को गाड़ी जब हाँक दी गई तब चमेली रोकर मनोहरनाथ के पैरों पर गिर पड़ी और कहने लगी—अजी मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम मुझे मेरे घर पहुँचा दो। मनोहर-

नाथ ने दोनों हाथों से जल्दी से उसका मुँह दबा दिया। गाड़ी तेज़ी से चलने लगी।

जल मे डूबकर मर रहे मनुष्य को दम भर मे जैसे जीवन की सब घटनाएँ स्पष्ट देख पड़ने लगती हैं वैसे ही उस बन्द गाड़ी के अन्धकार के भीतर चमेली को याद पड़ने लगा कि भोजन के समय उसके पिता उसको सामने बिठलाये बिना भोजन न करते थे, याद पड़ा कि उसके छोटे भाई स्कूल से आकर उसी से खाने को माँगते थे; याद पड़ा कि सबेरे वह अपनी मा के साथ घर का काम-काज करती थी और शाम को मा अपने हाथ से उसकी चोटी बाँध देती थी। घर का हर एक कोना और हर दिन का हर एक छोटा काम उसे याद आने लगा—तब उसे अपना वह निराला जीवन और वह छोटा घर ही स्वर्ग जान पड़ने लगा। उस समय उसे घर का काम-काज करना, भोजन के समय पिता को पङ्खा झलना, दोपहर को माता की सेवा करना, भाइयों का उपद्रव सहना—यही सब उसे परम-शान्ति-पूर्ण दुर्लभ सुख के समान जान पड़ने लगा।

जान पड़ने लगा, पृथ्वी के हर एक घर मे इस समय कुल-कामिनियाँ गहरी नींद में सो रही होंगी। उस अपने घर मे, अपनी खटिया पर, रात के सन्नाटे मे निश्चिन्त निद्रा बड़े ही सुख की थी। हाय! यह बात पहले से उसे क्यो न सूझी! गृहस्थों की औरते कल सबेरे जगकर बिना किसी सङ्कोच के अपने नित्य के काम करने लगेंगी और घर से निकली हुई

निद्राहीन चमेली की रात कहाँ जाकर समाप्त होगी! उस निरानन्द प्रातःकाल मे जब चमेली के घर सूर्य्य देव का प्रकाश प्रवेश करेगा तब वहाँ सहसा कैसी लज्जा प्रकाशित हो पड़ेगी—कैसी लाञ्छना, कैसा हाहाकार जग उठेगा।

चमेली बहुत रोई-धोई; बहुत कुछ अनुनय-विनय करके उसने कहा—अभी रात बाकी है! मेरी मा और दोनों भाई अभी तक जागे न होंगे! अभी तुम मुझे मेरे घर पहुँचा दो!

किन्तु उसके देवता ने इधर ध्यान नहीं दिया। एक सेकिंड क्लास की गाड़ी पर चढाकर मनोहरनाथ उसे उसके चिरवाञ्छित स्वर्गलोक की ओर ले चले।

थोड़ी देर के बाद ही देवता और स्वर्ग दोनों फिर एक दूसरी गाड़ी पर चढ़कर दूसरी ओर चले। विधवा गले-गले पाप मे डूबकर ग़ोते खाने लगी।

(३)

मनोहरनाथ के पहले इतिहास से हमने यहाँ पर इस एक घटना का उल्लेख किया है। अश्लीलता के ख़याल से अन्य घटनाओं का उल्लेख यहाँ पर नहीं किया गया।

इस समय उन गड़े मुर्दों को उखाड़ने की ज़रूरत भी नहीं। इस समय वह उस विनोदचन्द्र नाम को स्मरण रखनेवाला कोई आदमी जगत् मे है या नहीं, इसमे सन्देह है। इस समय मनोहरनाथ शुद्ध आचारवाले हिन्दू हैं। वे नित्य तर्पण करते हैं और सदा शास्त्र की चर्चा किया करते हैं। अपने छोटे-

छोटे लड़कों को भी योगाभ्यास कराते हैं और अपनी औरतो को सूर्य-चन्द्र-वायु की भी जहाँ गति नही उस अन्तःपुर में सुरक्षित रखते हैं। किन्तु एक समय उन्होंने कई रमणियों का अपराध किया था, इस कारण आज स्त्रियो के सब प्रकार के सामाजिक अपराधो के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करते हैं।

चुन्नो को फाँसी का हुक्म देने के दो एक दिन बाद भोजन-विलासी मनोहरनाथ जेलखाने के बाग़ से तरकारी वग़ैरह लेने के लिए वहाँ गये। उस समय यह जानने के लिए उन्हे कौतूहल हुआ कि चुन्ना अपने पतित जीवन के सब अपराधो का स्मरण करके पश्चात्ताप कर रही है या नहीं। जेल के भीतर जहाँ औरते रक्खी जाती हैं वहाँ मनोहरनाथ गये।

वहाँ दूर ही से उन्हे लड़ाई-झगड़े का कोलाहल सुन पड़ा। भीतर जाकर देखा, चुन्नी पहरे के सिपाही के साथ झगड़ा कर रही है। मनोहरनाथ अपने मन मे हँसे। सोचा, स्त्रियों का स्वभाव ऐसा ही होता है! मौत सिर पर है तो भी लड़ना-झगड़ना नहीं छोड़ती। ये शायद यमपुरी मे जाकर यमदूतो से भी झगड़ा किये विना न रहेंगी।

मनोहरनाथ ने सोचा, यथोचित भर्त्सना और उपदेश के द्वारा इस समय चुन्नो के हृदय मे पश्चात्ताप पैदा करना उचित है। इसी साधु उद्देश्य से ज्योंही वे चुन्नो के पास गये त्योंही चुन्नी ने हाथ जोड़कर करुण स्वर से कहा—जज साहब, तुम्हारी दोहाई है! इससे कहो, मेरी अँगूठी मुझे दे दे!

पूछने से मालूम हुआ, चुन्नी की चोटी के भीतर वह अँगूठी छिपी हुई थी। अचानक पहरेदार की उस पर नज़र पड़ी और उसने उससे वह छीन ली।

मनोहरनाथ फिर अपने मन मे हँसे। कल फाँसी पर लटक जायगी तब भी अँगूठी का मोह नही छोड़ सकती! गहना ही औरतो का सर्वस्व है।

पहरे के सिपाही से मनोहरनाथ ने कहा—'कहाँ है अँगूठी, देखें।' सिपाही ने उनको अँगूठी दे दी।

जैसे एकाएक जलता हुआ अङ्गारा किसी ने मनोहरनाथ के हाथ मे रख दिया हो, इस तरह वे चौंक पड़े। अँगूठी मे एक ओर हाथी-दाँत के ऊपर तेल के रङ्ग से अङ्कित दाढ़ी-मूछवाले एक युवक का छोटा सा चित्र रक्खा हुआ था और दूसरी ओर सोने मे खुदा हुआ था—विनोदचन्द्र।

तब मनोहरनाथ ने अँगूठी से नजर उठाकर एक बार चुन्नी के मुख को अच्छी तरह देखा। चौबीस वर्ष पहले का और एक अश्रुपूर्ण प्रीति-कोमल सलज्ज-शङ्कित मुख याद आ गया। उससे यह चेहरा बहुत मिलता है।

मनोहरनाथ ने फिर एक बार उस सोने की अँगूठी की तरफ़ देखा और उसके बाद धीरे-धीरे जब उन्होने सिर उठाया तब उनके सामने वह कलङ्किनी पतित रमणी, एक छोटी सी सोने की अँगूठी की उज्ज्वल आभा से, स्वर्णमयी देवी-प्रतिमा के समान उद्भासित हो उठी।

मध्यवर्त्तिनी

(१)

सुन्दर निहायत मामूली ढंग का था। उसमें काव्यरस की गन्ध तक न थी। उसके मन मे कभी यह बात नहीं आई कि जीवन में उक्त रस की कुछ आवश्यकता होती है। जैसे परिचित पुराने जूते के भीतर पैर बिलकुल निश्चिन्त भाव से प्रवेश करते हैं वैसे ही पुरातन पृथ्वी के भीतर सुन्दर अपने चिराभ्यस्त स्थान पर दख़ल जमाये हुए था। इस सम्बन्ध में कभी भूलकर भी उसने अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता, तर्क या तत्त्वालोचना को स्थान नहीं दिया।

सुन्दर सबेरे उठकर गली के किनारे घर के द्वार पर नङ्गे बदन बैठकर नारियल हाथ मे लिये तमाखू पिया करता है। राह मे लोग आते-जाते हैं, गाड़ी-घोड़े चलते हैं, फ़क़ीर गीत गाते भीख माँगते फिरते हैं। इन सब चञ्चल दृश्यों में वह अपने मन को बहलाये रखता है। उसके बाद यथासमय तेल लगाकर, नहाकर, भोजन के पश्चात् कोट पहनकर, एक चिलम तमाखू जलाकर और एक पान खाकर वह दफ़्तर जाता है। आफ़िस से लौट आकर शाम को परोसी शिवनाथ की बैठक मे गम्भीर भाव से सायङ्काल बिताकर भोजन के उपरान्त सो रहता है। उस समय स्त्री पार्वती का सामना होता है।

उस समय परोसी के लडके के ब्याह मे निमन्त्रितों के आदर की कमी, नव नियुक्त दासी की बदमाशी आदि बातों की उपयोगिता के सम्बन्ध मे जो संक्षिप्त समालोचना होती है, आज तक किसी कवि ने उसे छन्दोबद्ध नहीं किया और उसके लिए सुन्दर को कभी क्षोभ भी नही हुआ।

इसी बीच मे फागुन के महीने मे पार्वती बहुत बीमार पड़ गई। ज्वर किसी तरह पीछा न छोडता था। डाक्टर जितना ही कुनाइन देता था, बाधा को प्राप्त प्रबल स्रोत की तरह, उतना ही ज्वर की मात्रा बढ़ती जाती थी। इस तरह चालीस दिन तक पार्वती बीमार रही।

सुन्दर का आफ़िस जाना बन्द था। शिवनाथ के बैठक-ख़ाने मे भी बहुत दिनों से जाना नही हुआ। सुन्दर को कोई उपाय नही सूझता था। वह एक बार शयन-गृह मे जाकर रोगी की अवस्था पूछ आता है और फिर बाहर के बरामदे में बैठकर चिन्तित मुख लिये तमाखू पीने लगता है। नित्य नये डाक्टर-वैद्य की दवा बदली जाती है और जो जो कुछ बताता है वही रोगी को दिया जाता है।

स्नेह की ऐसी अव्यवस्थित शुश्रूषा होने पर भी पार्वती आराम हो गई। किन्तु ऐसी दुर्बल और शीर्ण हो गई कि शरीर जैसे बहुत दूर से अत्यन्त क्षीण स्वर से कह रहा है कि "मैं हूँ।"

उस समय वसन्त ऋतु का दक्षिण पवन चलने लगा था और गर्मियों की चाँदनी भी स्त्रियों के खुले हुए सोने के कमरों मे चुपचाप प्रवेश करने का अधिकार पा चुकी थी।

पार्वती के कमरे के नीचे हो परोसी के घर का बाग़ था। वह कुछ विशेष रमणीय सुदृश्य स्थान नहीं कहा जा सकता। किसी समय किसी ने शौक़ करके कई 'करोटन' के पेड़ लगा दिये थे, तब से उसने उनकी ओर विशेष ध्यान नही दिया। एक ओर मचान पर कई कुँमड़े की बेले फैली हुई थीं। बड़े भारी बेर के पेड के नीचे घास-फूस का जङ्गल सा लगा हुआ था। रसोईघर के पास दीवार टूटी हुई थी और वहाँ कुछ ईंटें ढेर थी। उसी जगह पर कोयले और राख का ढेर दिन-दिन ऊँचा होता जाता था।

किन्तु इन दिनो कमरे मे खिड़की के पास लेटकर, उसी बाग़ की ओर देखकर, पार्वती जो एक प्रकार का आनन्द पाती थी वैसा आनन्द इस ज़िन्दगी मे उसे और कभी नहीं मिला। गर्मियों मे स्रोत का प्रवाह धीमा पड़ने पर छोटी नदी जब बालू की शय्या पर दुर्बल शीर्ण होकर पड़ो रहती है तब वह जैसे अत्यन्त स्वच्छता प्राप्त करती है—तब जैसे प्रातःकाल की धूप उसके सर्वाङ्ग मे व्याप्त हो रहती है, वायु का स्पर्श उसके सब अंशों को पुलकित बना देता है और आकाश के तारागण उसके स्फटिक-दर्पण के ऊपर सुख-स्मृति की तरह अत्यन्त स्पष्ट भाव से प्रतिबिम्बित होते हैं, वैसे ही पार्वती के क्षीण जीवन तन्तु

के ऊपर आनन्दमयी प्रकृति की हर एक उँगली जैसे फिरने लगी और हृदय के भीतर जो एक प्रकार का सङ्गीत सुन पड़ने लगा उसके ठीक भाव को वह अच्छी तरह समझ नहीं सकती थी।

ऐसे समय जब उसका स्वामी पास बैठकर पूछता था कि कैसी तबियत है, तब उसकी आँखों में आँसू भर आते थे। रोग-शिथिल चेहरे मे उसकी दोनो आँखें बहुत बड़ी जान पड़ती थीं। उन्ही बड़ी-बड़ी प्रेमार्द्र कृतज्ञता-पूर्ण आँखों से स्वामी के मुख की ओर ताकती हुई अपने हाथ मे स्वामी का हाथ लेकर वह चुपचाप पड़ी रहती थी। स्वामी के हृदय मे भी मानों कहीं से एक अपरिचित नवीन आनन्द की किरणें आकर प्रवेश करने लगती थीं।

इसी तरह कुछ दिन बीते। एक दिन रात को, टूटी दीवार की दरार से निकले हुए, छोटे से हिल रहे पीपल के पेड़ की शाखाओं के भीतर से झाँकता हुआ चन्द्रमा आकाश मे ऊपर उठ रहा था, सन्ध्याकाल के सन्नाटे को मिटाकर एकाएक हवा चलने लगी थी, इसी समय प्रेमपूर्वक सुन्दरलाल के बालो के भीतर अंगुलि-सञ्चालन करती हुई पार्वती ने कहा—मेरे तो कोई लड़का-बाला नहीं हुआ, तुम और एक ब्याह कर लो।

पार्वती कुछ दिनो से यही बात सोच रही थी। मन मे जब एक प्रबल आनन्द, एक बृहत् प्रेम का सञ्चार होता है तब मनुष्य समझता है कि मैं सब कर सकता हूँ। तब एका-

एक किसी प्रकार का स्वार्थत्याग दिखाने की इच्छा प्रबल हो उठती है। स्रोत का उच्छ्वास ज्योंही कठिन तट के ऊपर वेग से आकर टकराता है त्योंही प्रेम का आवेग, आनन्द का उच्छ्वास एक महत् त्याग और बृहत् दु:ख के ऊपर मानों अपने को फेकना चाहता है।

ऐसी ही अवस्था मे एक दिन, अत्यन्त पुलकित प्रसन्न मन से, पार्वती ने निश्चय किया कि मैं अपने स्वामी के लिए कोई बड़ा भारी स्वार्थत्याग दिखाऊँगी। किन्तु हाय! जितनी साध होती है उतनी शक्ति किसमें है! हाथ में क्या है; क्या दिया जाय! ऐश्वर्य नहीं है, बुद्धि नहीं है, क्षमता नहीं है; केवल प्राण हैं, उन्हे अगर कही स्वामी के लिए देना पड़े तो अभी देने को तैयार हूँ। किन्तु उन प्राणों का भी मूल्य क्या है?

फिर पार्वती अपने मन मे कहने लगी—और अगर अपने स्वामी को मैं एक दूध के समान गोरा, मक्खन के समान कोमल, बालक-कामदेव के समान सुन्दर स्नेह-पात्र बच्चा दे सकती! किन्तु प्राणपण से इच्छा करके मर जाने पर भी तो वह नही कर सकती। तब पार्वती को यह ख़याल आया कि स्वामी का दूसरा ब्याह करा सकती हूँ। उसने सोचा, स्त्रियाँ इस बात के लिए इतना कुढ़ती क्यों हैं, यह काम तो कुछ भी कठिन नहीं है। स्वामी को जो स्त्री चाहती है उसके लिए सौत को प्यार करना कौन सा कठिन काम है! यह सोचकर उसका हृदय एक प्रकार के गर्व से फूल उठा।

सुन्दर ने अपनी स्त्री के मुख से जब यह अद्‌भुत प्रस्ताव सुना तब उसने उसे हँसकर उड़ा दिया। दूसरी तीसरी बार स्त्री के कहने पर भी उसने उधर कुछ ध्यान नही दिया। स्वामी की यह असम्मति और अनिच्छा देखकर पार्वती का सुख और विश्वास जितना ही बढ़ने लगा उतना ही उसकी प्रतिज्ञा और भी दृढ़ होने लगी।

उधर अपनी स्त्री के मुख से बारम्बार यह प्रस्ताव सुनकर सुन्दर के मन से उसके असम्भव होने का भाव दूर होने लगा और घर के द्वार पर तमाखू पीते-पीते सन्तान-परिवृत गृह का सुखमय चित्र उसके मन मे उज्ज्वल हो उठा।

एक दिन आप ही यह प्रसङ्ग उठाकर सुन्दर ने कहा—बुढ़ापे मे एक बालिका को व्याह कर मैं पाल-पोसकर बड़ी न कर सकूँगा।

"इसके लिए तुमको चिन्ता न करनी होगी—मैं इस काम को अपने ऊपर लेती हूँ।" यह कहते-कहते सन्तान-हीन पार्वती के मन से एक किशोर अवस्थावाली, सुकुमारी, लज्जा-शीला, माता से शीघ्र ही बिछुड़ी हुई नव-वधू के मुख की छवि उदित हो आई और हृदय स्नेह से विगलित हो उठा।

सुन्दर ने कहा—मेरे दफ़्तर है, काम काज है, तुम हो, बालिका-वधू को दुलराने की फ़ुर्सत और उमङ्ग मुझे नही है।

पार्वती ने बार-बार कहा—इसके लिए तुमको एक घड़ी नष्ट न करनी होगी, और अन्त को दिल्लगी के तौर पर कहा—

अच्छा तब देखूँगी, तुम्हारा काम कहाँ रहता है, तुम कहाँ रहते हो और मैं कहाँ रहती हूँ।

सुन्दर ने इस दिल्लगी का उत्तर देने की कुछ आवश्यकता नहीं समझी—केवल सज़ा के तौर पर पार्वती के कपोल पर एक उँगली से टुनकार दिया। यह तो हुई भूमिका।

(२)

एक छोटी सी बालिका के साथ अधेड़ सुन्दरलाल का ब्याह हो गया। उस बालिका का नाम था, जानकी।

सुन्दर ने सोचा, नाम बहुत मीठा है और मुँह भी दर्शनीय सुन्दर है। उसके भाव को, चेहरे को, चलने-फिरने को विशेष मनोयोग के साथ देखने की इच्छा होती है, किन्तु पार्वती के सामने वैसा किया नहीं जाता। बल्कि इसके विपरीत ऐसा भाव दिखाना पड़ता है कि इस नन्हीं सी औरत को ब्याह कर मैं तो बड़ी आफ़त में पड़ गया।

सुन्दर के इस भाव को देखकर पार्वती अपने मन में बहुत ही प्रसन्न होती थी। कभी-कभी सुन्दर का हाथ पकड़कर कहती थी—अजी भागे कहाँ जाते हो! यह छोटी सी बालिका कोई बाघ नहीं है कि तुमको खा जायगी—

सुन्दर और भी व्यग्र भाव दिखाकर कहता था—अरे ठहरो, ठहरो, मुझे एक ज़रूरी काम है। यह कहकर वह ऐसा भाव दिखाता था जैसे राह नहीं मिलती। पार्वती हँसकर दर्वाज़ा रोककर कहती थी—आज तुम भागकर जा नहीं

सकते। अन्त को सुन्दर मानो बिलकुल ही निरुपाय होकर कातर भाव से बैठ जाता था।

पार्वती उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहती थी—पराई लड़की को घर मे लाकर इस तरह अश्रद्धा दिखाना ठीक बात नहीं है।

यह कहकर जानकी को पकड़कर सुन्दर की बाईं ओर बिठलाती और ज़बर्दस्ती घूँघट खोलकर और ठोड़ी पकड़कर उसके झुके हुए मुख को ऊपर उठाकर सुन्दर से कहती थी—देखो, कैसा सुन्दर चाँद सा चेहरा है।

किसी-किसी दिन दोनो को एक जगह बिठाकर काम का बहाना करके कमरे के बाहर चली जाती थी और बाहर से द्वार बन्द कर लेती थी। सुन्दर जानता था कि कौतूहल से पूर्ण दो आँखे किसी न किसी छिद्र से अवश्य झाँक रही होंगी। इसलिए वह अत्यन्त उदासीन भाव से करवट बदलकर (नव-वधू की ओर से मुँह फेरकर) सोने का ढोंग दिखाता था। जानकी घूँघट काढ़कर एक कोने मे सङ्कोच के मारे लीन सी हो रहती थी।

अन्त को पार्वती ने बिलकुल लाचार होकर इस बात को छोड़ दिया। किन्तु इससे वह कुछ अधिक दुःखित नहीं हुई।

पार्वती ने जब ऐसा करना छोड़ दिया तब स्वयं सुन्दरलाल ने इधर ध्यान दिया। यह बड़े ही कौतूहल और बड़े ही रहस्य की बात हुई। एक हीरे का टुकड़ा मिलने पर उसे

तरह-तरह से घुमा-फिराकर देखने को जी चाहता है। किन्तु यह तो एक नौजवान सुन्दरी स्त्री का मन था—सुन्दरलाल के लिए बुढ़ापे मे एक बहुत ही अपूर्व और स्पृहणीय पदार्थ था। इसको कितनी ही तरह से छूकर, हाथ मे लेकर, भीतर से, सामने से, इधर-उधर से देखना पड़ता है! कभी एक बार कान का करनफूल हिलाकर, कभी घूँघट खोलकर, कभी बिजली की तरह चकित दृष्टि से देखकर और कभी नक्षत्र की तरह देर तक ताककर नवीन-नवीन सौन्दर्यों की सीमा का आविष्कार करना पड़ता है।

मैकमोरन कम्पनी के दफ़्तर के हेडक्लर्क श्रीयुत बाबू सुन्दर-लाल को अब से पहले कभी ऐसी अभिज्ञता नहीं नसीब हुई थी। पहले जब व्याह हुआ था तब वह बालक था। जब जवानी आई तब स्त्री उसके लिए चिरपरिचित थी। पार्वती को वह प्यार अवश्य करता था, किन्तु कभी उसके मन मे इस तरह क्रम-क्रम करके प्रेम का सचेतन सञ्चार नहीं हुआ था।

एकदम पके आम मे जो पतङ्ग पैदा हुआ हो, जिसे कभी रस की खोज न करनी पड़ी हो, जिसने थोड़ा-थोड़ा करके रस का स्वाद न लिया हो, उसे एक बार वसन्त ऋतु के विक-सित फूल-बाग़ मे छोड दो—देखो, अधखिले गुलाब के अध-खुले मुख के पास चक्कर लगाने के लिए उसे कितना आग्रह होता है! कुछ ही सुगन्ध और कुछ ही मधुर स्वाद मिलता है, लेकिन वह उसी मे मस्त रहता है।

सुन्दर पहले कभी विलायती चीनी के खिलौने, कभी एसेन्स की शीशी, कभी कुछ मिठाई बाज़ार से लाकर गुप्त रूप से जानकी को देने लगा। इस प्रकार दोनों में घनिष्ठता का सूत्रपात हुआ। अन्त को एक दिन पार्वती ने घर के काम से फ़ुर्सत पाकर कमरे के द्वार पर आकर किवाड़े के छेद से देखा, सुन्दर और जानकी बैठे हुए पचीसी खेल रहे हैं।

बुढापे का यही खेल है! सुन्दर सवेरे भोजन आदि करके दफ़्तर गया था। लेकिन वास्तव मे दफ़्तर न जाकर छिपकर घर में आ गया! इस दग़ाबाज़ी की क्या ज़रूरत थी! एकाएक जलती हुई सलाई से किसी ने मानो पार्वती की आँखें खोल दीं। उसके तीव्र ताप से आँखो का पानी भाप बनकर सूख गया!

पार्वती ने मन से कहा—मैंने ही आग्रह करके दूसरा ब्याह कराया, मैंने ही मिलन करा दिया और फिर मुझसे ही धोखेबाज़ी! जैसे मैं ही दोनों के सुख मे काँटा हूँ!

पार्वती जानकी को घर का काम-काज सिखाती थी। एक दिन सुन्दर ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—वह अभी बच्ची है। तुम उससे बहुत परिश्रम कराती हो, उसमे इतनी ताक़त नहीं है।

बहुत ही तीव्र उत्तर को पार्वती मुख के पास लाकर लौटा ले गई। कुछ नही कहा।

तब से पार्वती जानकी को घर के किसी काम मे हाथ लगाने नही देती थी। रसोई आदि सब काम आप ही करती थी। ऐसा हुआ कि जानकी ने जगह से हिलना छोड़ दिया।

पार्वती दासी की तरह उसकी सेवा करती थी और सुन्दर विदूषक की तरह उसका मनोरञ्जन करता था। घर का काम-काज करने की, अपने को छोड़कर दूसरे को देखने की, शिक्षा ही उसे नहीं हुई।

पार्वती जो दासी की तरह चुपचाप घर का काम करने लगी उसका उसे भारी गर्व था। उसके भीतर हीनता या दीनता नहीं थी। उसने कहा—तुम दोनों बच्चे मिलकर खेलो, घर के काम की देख-रेख मैं करूँगी!

(३)

हाय, आज कहाँ वह बल है जिस बल के भरोसे पार्वती ने सोचा था कि वह स्वामी के लिए सदा के वास्ते अपने प्रेम का आधा अधिकार सुखपूर्वक छोड़ देगी। एकाएक एक दिन पूर्णिमा की रात्रि को जब जीवन-प्रवाह मे ज्वार आता है तब मनुष्य उमङ्ग के मारे समझता है कि मेरी सीमा कहीं नहीं है। तब वह जो बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर बैठता है, जीवन-प्रवाह के सुदीर्घ भाटे के समय उस प्रतिज्ञा की रक्षा करने मे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मनुष्य अकस्मात् ऐश्वर्य के दिन में एक बार क़लम चलाकर जो दान-पत्र लिख देता है, चिरदारिद्र्य के दिन कौड़ी-कौडी करके वह दान चुकाना पड़ता है। तब जान पड़ता है कि मनुष्य बहुत ही हीन है, बहुत ही दुर्बल है। उसकी क्षमता बहुत ही साधारण है।

बहुत दिनो की बीमारी के बाद क्षीण, रक्तहीन, पीली पड़ गई पार्वती उस दिन शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा के समान एक शीर्ण रेखामात्र थी—संसार मे बहुत ही हलकी होकर उडी-उड़ी फिर रही थी। उस समय उसे जान पड़ा था कि कुछ भी न हो तो मेरा काम चल सकता है। किन्तु धीरे-धीरे शरीर पुष्ट और सबल हो आया, रक्त का तेज बढ़ने लगा। उस समय पार्वती के मन मे कुछ प्रवृत्तियो ने आकर कहा—तुमने तो दान-पत्र लिख दिया है, मगर हम अपना दावा किसी तरह नहीं छोड सकती।

पार्वती ने जिस दिन साफ़ तैार से अपनी अवस्था को समझ लिया उस दिन अपना कमरा सुन्दर और जानकी के लिए ख़ाली करके आप दूसरी कोठरी मे अकेली जाकर सो रही।

तेरह-चैादह वर्ष की अवस्था मे पहले पहल जिस पलँग पर उसने पैर रक्खा था, आज सत्ताईस वर्ष बाद उस शय्या को त्याग कर दिया। दीपक बुझाकर वह सधवा रमणी नवीन वैधव्यशय्या पर लेट रही। उस समय गली के मोड़ पर एक शैाक़ीन नैाजवान बिहाग की एक चीज़ गा रहा था, एक आदमी 'बायाँ' बजा रहा था और सुननेवाले इष्टमित्र हा हा हा हा करके हँसते और आनन्द प्रकट कर रहे थे।

वह गाना-बजाना उस चाँदनी रात मे पास के कमरे मे लेटे हुए सुन्दरलाल को बहुत अच्छा जान पड रहा था। उस समय बालिका जानकी नींद के मारे झूम रही थी और

आनन्द-गद्गद सुन्दर बार-बार 'प्यारी, प्यारी' कहकर उसे सचेत करने की चेष्टा कर रहा था।

सुन्दर ने इसी बीच में बङ्किम बाबू का 'चन्द्रशेखर' उपन्यास पढ़ डाला था और वह दो-एक आधुनिक कवियों के शृङ्गार-सम्बन्धी काव्य भी जानकी को पढ़कर सुना चुका था।

सुन्दर के जीवन की निचली तह मे एक जवानी का 'झरना' दबा पड़ा हुआ था; आघात पाकर अकस्मात् वह बहुत ही कुसमय में उच्छ्वसित हो उठा। कोई इसके लिए तैयार न था। इसी कारण सुन्दर का बुद्धि-विवेक और उसकी गिरिस्ती का सब प्रबन्ध उलट-पुलट गया। वह बेचारा यह नही जानता था कि मनुष्य के हृदय के भीतर ऐसे उपद्रवजनक पदार्थ रहते हैं, ऐसी प्रचण्ड प्रवृत्तियां रहती हैं जो सब हिसाब-किताब, सब शृङ्खला-सामञ्जस्य नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं।

केवल सुन्दर का ही यह हाल नहीं हुआ, पार्वती को भी एक नई वेदना का परिचय प्राप्त हुआ। यह काहे की आकांक्षा है—यह काहे की दुस्सह यन्त्रणा है। इस समय मन जो चाहता है उसे उसने और कभी नही पाया, और कभी चाहा भी नहीं। जब भले आदमियों की तरह सुन्दर नित्य आफ़िस जाता था, जब सोने के पहले कुछ देर तक गिरिस्ती के ख़र्च और काम-काज के बारे में और लौकिकता के कर्त्तव्य के सम्बन्ध मे पार्वती के साथ बातचीत करता था तब तो इस घरेलू लड़ाई का नाम-निशान भी न दिखाई पड़ता था। वह

पार्वती को चाहता ज़रूर था, लेकिन उस चाहने में कोई उज्ज्वलता, कोई जोश नहीं देख पड़ता था। वह चाहना अग्निहीन ईंधन के समान अप्रकाशित ही था।

आज पार्वती को जान पड़ा, उसे मानो कोई सदा से जीवन की सफलता से वञ्चित रक्खे हुए है। उसका हृदय मानों सदा से उपवास किये हुए है। उसका यह नारी-जीवन बड़ी ही ग़रीबी में कटा है। उसने केवल पान-मसाला तरकारी आदि के झंझट में ही बहुमूल्य जीवन, दासी की तरह, बिता दिया है। आज ज़िन्दगी की राह के मध्यस्थल में आ- उसने देखा, उसी के सोने की कोठरी के पास एक गुप्त महत् ऐश्वर्य के भण्डार का ताला खोलकर एक छोटी सी बालिका राज-राजेश्वरी बनी बैठी है। स्त्री दासी अवश्य है, लेकिन उसके साथ ही वह रानी भी है। किन्तु उसमें हिस्सा लगा-कर एक स्त्री रानी और दूसरी स्त्री दासी हुई, इससे दासी का गौरव नहीं रहा और रानी का सुख भी नहीं रहा।

क्योंकि जानकी को भी स्त्री-जीवन का यथार्थ सुख नहीं मिला। लगातार इतना अधिक आदर पाने से उसे भी किसी को स्नेह करने का अवसर नहीं मिला। समुद्र की ओर बहने में, समुद्र के बीच आत्मविसर्जन करने में शायद नदी की बड़ी भारी सफलता है। किन्तु समुद्र यदि 'ज्वार' की उमङ्ग में आकर—उसके आकर्षण से आकृष्ट होकर बराबर नदी की ओर ढुल पड़े तो नदी की सफलता नहीं है। उससे नदी

ठीक राह पर न जाकर मनमानी राह से चलकर पास रहनेवालो के लिए कष्ट और दुःख का कारण बनेगी। सुन्दर अपने हृदय का सारा आदर लेकर दिन-रात जानकी की ओर आकृष्ट हो रहा, इससे जानकी का आत्माभिमान और सौभाग्य-गर्व दिन-दिन बढ़कर उचित सीमा को उल्लङ्घन कर चला। पति को चाहने का, उसका आदर करने का, अवसर ही उसे नहीं मिला। उसने जाना, मेरे ही लिए सब है और मैं किसी के लिए नहीं हूँ। इस अवस्था मे अहङ्कार तो यथेष्ट है, किन्तु तृप्ति कुछ भी नहीं।

(४)

एक दिन ख़ूब बादल घिरे हुए थे। ऐसी अँधेरी झुक आई थी कि घर के भीतर कोई काम करना कठिन हो रहा था। बाहर पानी बरस रहा था। बेर के पेड़ के नीचे का घास-फूस का जङ्गल पानी मे डूब गया था और दीवार के पास नाली मे बड़े शब्द से पानी का प्रवाह गिर रहा था। पार्वती अपनी निराली कोठरी की खिडकी के पास चुपचाप बैठी हुई थी।

इसी समय सुन्दर ने धीरे-धीरे चोर की तरह वहाँ प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर वह इस असमञ्जस मे पड़ गया कि पार्वती के पास जाऊँ या लौट जाऊँ। पार्वती ने उसकी इस हरकत पर ध्यान दिया, लेकिन मुँह से कुछ नहीं कहा।

तब सुन्दर एकाएक एकदम तीर की तरह सीधा पार्वती के पास पहुँचा। और पहुँचते ही कह उठा कि कुछ गहनो की ज़रूरत है। ऋण बहुत सिर पर चढ़ गया है, महाजन

उसके लिए अपमान करने को तैयार है, कुछ चीज़ें रेहन रखनी होंगी। चीज़ें शीघ्र ही छुड़ा दी जायँगी।

पार्वती ने कुछ उत्तर नही दिया। सुन्दर चोर की तरह खड़ा रहा। अन्त को फिर उसने कहा–तो आज दे सकती हो?

पार्वती ने कहा—नही।

पार्वती की कोठरी मे जाना जैसे कठिन था, वैसे ही वहाँ से बाहर निकलना भी कठिन था। सुन्दर ने इधर-उधर ताक-कर कहा—अच्छा तो और जगह कुछ उपाय करने जाता हूँ। यह कहकर वह चल दिया।

ऋण किससे लिया है और किसे गहने देने होंगे–यह बात पार्वती को अच्छी तरह मालूम थी। उसने सुना था, रात को जानकी ने बुद्धिहीन पोष्यपुरुष सुन्दर से झनककर कहा था—जीजी के सन्दूक भर गहने हैं और मुझे एक भी गहना नही मिला।

सुन्दर के चले जाने पर पार्वती उठी और सन्दूक खोलकर एक-एक करके सब गहने निकाले। जानकी को बुलाकर पहले पार्वती ने उसे अपने ब्याह की बनारसी सारी पहनाई। उसके बाद उसे सिर से पैर तक एक-एक करके सब गहने पहना दिये। अच्छी तरह चोटी बाँधकर पार्वती ने देखा तो उसे बालिका जानकी का मुख बहुत ही सुन्दर जान पड़ा—एक तुरत के पके सुगन्धित फल की तरह मधुर रसपूर्ण जान पड़ा।

जानकी जब गहने पहनकर उठकर झम-झम करती हुई वहाँ से चली गई तब वह शब्द बहुत देर तक पार्वती की नसों के

रक्त में मानों झनकार मारता रहा। पार्वती ने अपने मन मे कहा—और किस बात को लेकर तेरी और मेरी तुलना होगी। किन्तु एक समय मेरी भी यह अवस्था थी, मैं भी इसी तरह सिर से पैर तक जवानी के जोम मे भरी हुई थी। किन्तु उस समय किसी ने उसकी ख़बर मुझे क्यो नहीं दी? कब वह दिन आया और कब चला गया, इसका समाचार एकबारगी किसी ने मुझे नही दिया! किन्तु वाह मुझसे एक बात भी न करके कैसे गर्व और गौरव के साथ जानकी चली गई।

पार्वती जब केवल गिरिस्ती को ही सब कुछ जानती थी तब ये गहने उसकी दृष्टि मे बड़े क़ीमती थे! तब भला क्या वह यों बेवक़ूफ़ की तरह ये गहने दम भर मे दूसरे को सौंप देती? किन्तु इस समय उसे सब चीज़ों से वैराग्य सा हो गया है।

सोने के गहने पहनकर जानकी अपने कमरे मे चली गई—उसने दम भर के लिए भी यह ख़याल नही किया कि पार्वती ने उसे क्या दे डाला। उसने सोचा कि चारों ओर से सब सेवा, सब सम्पत्ति और सब प्रकार का सौभाग्य स्वाभाविक नियम के अनुसार उसी को मिलना चाहिए। क्योंकि वह अपने पति की दुलारी जानकी है!

(५)

कुछ लोग ऐसे रोग से ग्रस्त होते हैं कि स्वप्न की अवस्था मे अत्यन्त सङ्कट के मार्ग से चले जाते हैं, कुछ भी नही सोचते। अनेक जागते हुए मनुष्यों को भी ऐसा ही रोग हो जाता है।

उन्हे कुछ भी ज्ञान नही रहता। वे विपत्ति के तङ्ग रास्ते मे बहुत ही निश्चिन्त भाव से अग्रसर होते हैं और अन्त को दारुण सर्वनाश के बीच जाकर जाग पडते हैं।

हमारे सुन्दरलाल की भी ऐसी ही दशा हुई। जानकी उसके जीवन प्रवाह के बीच एक प्रबल 'भँवर' की तरह घूमने लगी और बहुत दूर से विविध बहुमूल्य पदार्थ आकृष्ट होकर उसके भीतर समाने लगे। केवल सुन्दरलाल का मनुष्यत्व, मासिक वेतन, पार्वती का सुख-सौभाग्य और वस्त्राभूषण ही नही खिचने लगे, बल्कि गुप्त रूप से मैकमोरन कम्पनी की रोकड़ भी खिचकर आने लगी। धन तो उस रोकड से घटता था, लेकिन सुन्दरलाल को ख़ुद यह नहीं मालूम था कि वह धन कहाँ चला जाता है। सुन्दर हर महीने यह सोचता था कि अब की महीने की तनख़्वाह मिलने पर रोकड़ पूरी कर दूँगा। किन्तु तनख़्वाह हाथ मे आते ही उसी 'भँवर' के आकर्षण से पड़कर अन्त को दुअन्नी-चवन्नी तक उसी मे ग़ायब हो जाती थी। इसी तरह धीरे-धीरे रोकड़ मे से बहुत सी रक़म ग़ायब हो गई।

अन्त को एक दिन भण्डा फूट गया। पुश्तैनी नौकरी थी। साहब उसको बहुत चाहते थे। उन्होने सुन्दरलाल को तहवील पूरी करने के लिए केवल दो दिन का समय दिया।

किस तरह धीरे-धीरे रोकड़ से ढाई हज़ार रुपये ग़ायब हो गये, यह बात बहुत विचारने पर भी सुन्दर समझ न सका।

एकदम पागल की तरह होकर वह दौड़ा हुआ पार्वती के पास गया। पार्वती के पास जाकर सुन्दर ने कहा—ग़ज़ब हो गया!

सब हाल सुनकर पार्वती का चेहरा पीला पड़ गया!

सुन्दर ने कहा—शीघ्र गहने निकालो।

पार्वती ने कहा—मैंने तो वे गहने जानकी को दे दिये!

सुन्दर बालक की तरह अधीर और रुआसा होकर कहने लगा—तुमने उसे क्यों दिये? क्यों दिये? तुमसे किसने देने के लिए कहा था?

पार्वती ने इसका ठीक उत्तर न देकर कहा—तो हानि क्या हो गई? वे गहने कहीं चले थोड़े गये हैं।

डरपोक सुन्दर ने कातर स्वर मे कहा—हाँ, अगर तुम कोई बहाना करके उससे गहने निकाल सको तो अच्छी बात है। लेकिन तुम्हें मेरे सिर की क़सम, उससे यह न कहना कि मैं गहने माँग रहा हूँ!

तब पार्वती अत्यन्त खीझ और घृणा के साथ कह उठी—यही तुम्हारे बहाना करने का—आदर दिखाने का समय है। चलो!

यह कहकर स्वामी को साथ लिये पार्वती जानकी के कमरे में गई। जानकी ने एक बात न सुनी। हर बात का यही एक उत्तर दिया कि सो मैं क्या जानूँ!

दुनिया की कोई चिन्ता उसे करनी होगी—स्वामी की भलाई-बुराई पर ध्यान देना होगा, ऐसा वादा तो उससे किया नहीं गया था। सब अपनी-अपनी चिन्ता करें और सब मिलकर

जानकी के आराम का ख़याल रक्खे, ऐसा ही होना चाहिए। अकस्मात् उसके विपरीत होना कैसा बडा अन्याय है।

तब सुन्दर जानकी के पैर पकड़कर रोने लगा। किन्तु जानकी ने उसके उत्तर मे यही कहा—यह कुछ मैं नहीं जानती। मैं अपनी चीज़ क्यों दूँ ?

सुन्दर ने देखा, यह दुबली-पतली सुन्दर सुकुमारी बालिका लोहे के सन्दूक़ की अपेक्षा भी कठिन है। सङ्कट के समय स्वामी की ऐसी कमज़ोरी देखकर पार्वती घृणा से कुढ़ उठी। उसने जानकी से जबर्दस्ती तालियो का गुच्छा छीन लेना चाहा। जानकी ने और उपाय न देखकर वह गुच्छा दीवार के उस तरफ़ तालाब मे फेक दिया।

पार्वती ने बुद्धिहीन किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्वामी से कहा—देखते क्या हो, ताला क्यो नही तोड़ डालते !

जानकी ने निश्चिन्त भाव से कहा—तो मैं फाँसी लगाकर मर जाऊँगी !—

सुन्दर ने कहा—रहने दो, मैं एक और उपाय करके रोकड़ पूरी करने की चेष्टा करूँगा।

अब वह पागल की तरह बाहर चला गया। दो घण्टे के भीतर सुन्दर ने बाप दादे का घर ढाई हज़ार रुपये में बेच डाला !

बहुत मुशकिल से हाथो मे हथकड़ियाँ पड़ना रुक गया, किन्तु नौकरी चली गई। स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति मे केवल दो स्त्रियाँ बच रही। उनमे से जानकी गर्भवती होकर बिल-

कुल ही स्थावर होकर पड़ गई। गली के भीतर किराये के एक छोटे से घर में गृहविहीन सुन्दरलाल ने जाकर आश्रय लिया।

(६)

जानकी के असन्तोष और असुख की सीमा नहीं रही। वह किसी तरह यह समझना नहीं चाहती कि उसके स्वामी में उसे सन्तुष्ट रखने की क्षमता नहीं है। क्षमता नहीं थी तो ब्याह क्यों किया था।

ऊपर के खण्ड में केवल दो कमरे थे। एक कमरे में सुन्दर और जानकी के सोने का स्थान था और दूसरे कमरे में पार्वती रहती थी। जानकी सदा रुआसी होकर मिनमिनाकर कहा करती थी—इस गन्दे और छोटे घर में मैं रह नहीं सकती।

सुन्दर मिथ्या आश्वास देकर कहता था—मैं और एक घर की तलाश में हूँ, शीघ्र ही घर बदलूँगा।

जानकी कहती थी–क्यों, यह पास ही तो बड़ा मकान है।

जानकी पहले जब अपने मकान में थी तब उसने परोसिनों से बात करना कैसा, कभी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा था। सुन्दरलाल की वर्त्तमान दुर्दशा से व्यथित होकर परोस की दो औरतें एक दिन जानकी के पास सहानुभूति प्रकट करने आईं। जानकी अपने कमरे के किवाड़ बन्द किये भीतर बैठ रही, किसी तरह कमरा नहीं खोला। उनके चले जाने पर उसने रो-धोकर भूखे-प्यासे रहकर आकाश सिर पर उठा लिया। इसी तरह के उत्पात प्रायः होने लगे। अन्त को

जानकी का शरीर ऐसा अस्वस्थ हो गया कि वह मृत्यु के मुख के पास पहुँच गई। यहाँ तक कि गर्भपात होने का ढङ्ग हो आया।

सुन्दर ने पार्वती के दोनो हाथ पकड़कर कहा—तुम जानकी को बचाओ।

पार्वती दिन-रात जी-तोड़ परिश्रम करके जानकी की सेवा और देखरेख करने लगी। ज़रा भी त्रुटि होने पर जानकी पार्वती को दुर्वचन कहती थी। किन्तु पार्वती कुछ उत्तर न देकर चुपचाप सब सुन लेती थी।

जानकी किसी तरह साबूदाना खाना न चाहती थी, पात्र समेत उठाकर उसे फेंक देती थी। ज्वर के समय इमली की चटनी खाने के लिए ज़िद्द करती। अगर न मिलती तो रो-धोकर अनर्थ मचा देती थी। पार्वती उसे मेरी बहन, मेरी प्यारी बहन, कहकर बच्चो की तरह बहलाने की चेष्टा करती थी।

किन्तु हज़ार चेष्टा करने पर भी जानकी की जान नहीं बची। दुनिया के दुलार, आदर को लेकर परम असुख और असन्तोष की अवस्था मे बालिका के क्षुद्र असम्पूर्ण व्यर्थ जीवन की ज्योति एक दिन बिना तेल के दीपक की तरह बुझ गई।

(७)

सुन्दर को पहले तो हृदय मे एक बड़ा भारी आघात प्राप्त हुआ। किन्तु वैसे ही उसने विचारकर देखा तो जान पड़ा कि उसका एक बड़ा कड़ा कष्टदायक बन्धन कट गया। शोक मे भी अकस्मात् उसे एक प्रकार की मुक्ति के आनन्द का अनुभव हुआ।

अकस्मात् उसे जान पड़ा कि इतने दिनों से उसकी छाती के ऊपर एक भारी पत्थर दबाया हुआ था। यों चैतन्य आते ही उसे अपना जीवन बहुत ही हलका जान पड़ा और उससे एक प्रकार का आराम मिला। वासन्ती लता की तरह यह जो कोमल जीवन-पाश टूट गया वही क्या उसकी प्यारी दुलारी जानकी थी ? सुन्दर ने विचारकर देखा, नहीं, वह उसके गले की फाँसी थी।

और उसकी सदा की साथिन पार्वती ? सुन्दर ने देखा कि वही उसकी घर-गिरिस्ती पर अधिकार जमाये हुए, उसके जीवन के सारे सुख-दुःखों की स्मृति के मन्दिर के भीतर विराजमान है। किन्तु तो भी उसके और सुन्दर के बीच मे एक विच्छेद की रेखा खिच गई है। ठीक जैसे एक छोटी सी उज्ज्वल सुन्दर निष्ठुर छुरी आकर एक हृत्पिण्ड के दक्षिण और वाम अंश के बीच मे एक वेदना-पूर्ण विदारण-रेखा खींच गई है।

उस दिन अधिक रात बीतने पर जब सारा शहर नींद में खर्राटे ले रहा था, सुन्दरलाल धीरे-धीरे पार्वती के सोने के कमरे में गया। चुपचाप पुराने नियम के अनुसार पुराने पलँग के दक्षिण ओर वह सो रहा। किन्तु उसे अपने पुराने अधिकार के भीतर चोर की तरह चुपके-चुपके प्रवेश करना पड़ा।

न तो पार्वती ने कुछ कहा और न सुन्दर ने ही। दोनों आदमी जैसे पहले पास ही पास सोते थे वैसे ही आज भी सोये। किन्तु दोनो के बीच मे एक मृत बालिका का आत्मा मानों उपस्थित रहा। उसे कोई नहीं लाँघ सका।

अत्याचार

ज़मींदार के नायब जानकीनाथ के घर मे प्यारी नाम की एक महराजिन रसोई बनाने के लिए नौकर हुई। उसकी अवस्था कम थी और चरित्र अच्छा था। दूर की रहनेवाली वह ब्राह्मणी विपत्ति के फेर मे पड़कर जानकीनाथ के घर आकर नौकर हुई ही थी कि एक दिन, मालिक की अनुराग-दृष्टि से अपने को बचाने के लिए, उसे मालकिन के आगे रोना पड़ा। मालकिन ने कहा—महराजिन, तुम और कहीं नौकरी कर लो, यहाँ तुम्हारा रहना अच्छा नहीं।

किन्तु वहाँ से भाग जाना सहज नहीं था। पास पूँजी भी कई आने पैसे ही थी। इस कारण महराजिन ने गाँव मे चन्द्र-भूषण भट्ट के यहाँ जाकर आश्रय लिया। समझदार लड़कों ने कहा—आप क्यों जान-बूझकर विपत्ति को अपने घर बुलाते हैं! भट्टजी ने कहा—विपत्ति यदि आपसे आकर आश्रय की प्रार्थना करे तो मैं उसे विमुख लौटा देना उचित नहीं समझता।

एक दिन नायब साहब ने आकर भट्टजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—भट्टजी, आपने हमारी महराजिन को क्यों अपने यहाँ रख लिया है? घर में रसोई बनानेवाले के बिना बड़ी दिक़्क़त हो रही है। इसके उत्तर मे भट्टजी ने दो-एक सच्ची बातें कड़ाई के साथ सुना दीं। वह प्रतिष्ठित और

सच्चे आदमी थे। किसी की ख़ातिर से कोई बात घुमा-फिरा-कर कहने का उनको अभ्यास नहीं था।

नायब मन ही मन उस चींटी के साथ भट्टजी की तुलना करते चले गये जिसके पर निकल आते हैं। जाते समय ख़ूब आडम्बर के साथ प्रणाम किया।

दो ही चार दिन के बाद भट्टजी के घर पुलिस पधारी। भट्टजी की स्त्री की तकिया के नीचे से नायब की स्त्री के जड़ाऊ करनफूल—चोरी का माल—बरामद हुए। महराजिन चोर साबित होकर जेल गई। भट्टजी देशप्रसिद्ध प्रतिपत्ति के बल से चोरी का माल रखने के अभियोग मे जेल गये बिना ही छुटकारा पा गये। भट्टजी ने निश्चय कर लिया कि मेरे आश्रय देने से ही महराजिन की यह दशा हुई। उनके हृदय मे यह बात काँटे की तरह खटकने लगी। लड़कों ने कहा, घर-बार छोड़कर कहीं बाहर चलिए। अब यहाँ रहना नही हो सकता। भट्टजी ने कहा—मैं बाप-दादे के घर को नहीं छोड़ सकता। जो भाग्य मे बदा होता है वही होता है। विपत्ति कहाँ नहीं आ सकती?

इसी बीच मे नायब ने ज़मीन पर बहुत अधिक लगान बाँधने की चेष्टा की, इससे प्रजा ने विद्रोह खड़ा कर दिया। भट्टजी के पास जितनी ज़मीन थी वह दान मे उन्हें मिली हुई थी। उसके साथ ज़मींदार का कुछ सम्बन्ध न था। नायब ने अपने मालिक से कहा—भट्टजी प्रजा को बहकाकर विद्रोही

बना रहे हैं। ज़मींदार ने कहा—जिस तरह हो सके, भट्ट को नीचा दिखाओ। नायब फिर भट्ट के पास आये और उसी तरह प्रणाम करके कहा—भट्टजी, सामने की यह ज़मीन परगने की सरहद मे पड़ती है, वह आपको छोड देनी पड़ेगी। भट्ट ने कहा—यह क्या बात है। वह तो बहुत दिनो से मेरी है।

भट्टजी के घर से मिली हुई ज़मीन के लिए ज़मींदार की ओर से नालिश हुई। भट्ट ने कहा—ज़मीन चाहे छूट जाय, मगर मैं बुढापे मे अदालत न जाऊँगा। लड़को ने कहा—अगर यही ज़मीन छोड देंगे तो घर मे कैसे रहेंगे ?

प्राणाधिक बाप-दादे के घर की ममता मे पड़कर वृद्ध भट्टजी काँपते हुए इजलास के सामने हाज़िर हुए। मुन्सिफ़ साहब ने उन्ही की गवाही पर विश्वास करके मुक़द्दमा डिसमिस कर दिया। भट्टजी की ज़मीन मे रहनेवाली प्रजा ने इस उपलक्ष मे बड़ा भारी उत्सव किया। भट्ट ने जल्दी से जाकर इन सबको ऐसा करने से रोका। नायब ने फिर आकर उसी तरह भट्टजी को प्रणाम किया और अपील रुजू कर दी। वकील लोग भट्टजी से मेहनताना नही लेते थे। उन्होने बारम्बार ब्राह्मण को आश्वास दिया कि मुक़द्दमे मे हारने की कोई सम्भावना नहीं है। दिन क्या कभी रात हो सकता है ?

एक दिन नायब के यहाँ बड़ी धूमधाम से सत्यनारायण की कथा हुई। मामला क्या है ? भट्टजी को पीछे से वकील के द्वारा मालूम हुआ कि अपील मे उनकी हार हो गई !

भट्टजी ने मत्था ठोंककर वकील से पूछा—आप क्या कहते हैं ? मेरी क्या दशा होगी ?

दिन किस तरह रात हो गया, इसका गूढ़ कारण वकील साहब ने इस तरह बतलाया—हाल में जो नये एडिशनल जज होकर आये हैं वह जब मुन्सिफ़ थे तब उन मुन्सिफ़ साहब से, जिन्होंने भट्टजी के मुक़द्दमे का फ़ैसला किया था, उनकी खटपट थी। उस समय यह उनका कुछ नहीं कर सके थे। अब जज होकर आये हैं और इसी से मुन्सिफ़ साहब के ख़िलाफ़ अपीलों का फ़ैसला करते हैं। इसी कारण आपकी हार हो गई।

व्याकुल भट्टजी ने पूछा—हाईकोर्ट में इसकी कुछ सुनवाई हो सकती है ? वकील ने कहा—जज साहब ने ऐसी राय लिखी है कि हाईकोर्ट लड़ने से भी कुछ लाभ नहीं हो सकता। उन्होंने आपकी गवाही पर विश्वास न करके उधर की गवाही पर ही विश्वास किया है।

आँखों में आँसू भरे हुए वृद्ध ने पूछा—तो फिर मेरे लिए क्या उपाय है ?

वकील ने बहुत ही विज्ञता के साथ सिर हिलाकर कहा—उपाय तो कुछ नहीं देख पड़ता।

दूसरे दिन नायब बड़ी धूमधाम से बहुत से आदमियों के साथ आकर भट्टजी को प्रणाम कर गया, और जाते समय कह गया कि प्रभु, तुम्हारी इच्छा !

क्षुधित पाषाण

मैं और मेरे एक आत्मीय एक दिन रेल पर बैठे हुए कलकत्ते जा रहे थे। इसी बीच मे रेलगाड़ी पर एक आदमी से मुलाक़ात हो गई। उसका पहनावा मुसलमानों का सा था। उसकी बाते सुनकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता था। पृथ्वी की सभी बातो के विषय मे वह इस तरह बाते करने लगा जैसे विधाता पहले उसी से सलाह करके सब काम किया करते हैं। विश्व-ससार के भीतर जो बहुत सी अश्रुतपूर्व गुप्त घटनाएँ होती हैं—जैसे रूसियो का भारत पर चढाई करने का इरादा, अँगरेज़ो की गुप्त अभिसन्धि, देशी राज्यों की मूर्खता आदि—उनके बारे मे कुछ न जानने के कारण हम लोग पूर्ण रूप से निश्चिन्त थे। हमारे नवपरिचित मित्र ने कुछ मुसकराकर कहा—There happen moie things in heaven and earth, Horatio, than are reported in your newspapers

घर से बाहर दूर जाने का यह पहला ही अवसर था। हम तो उसकी बाते सुनकर सन्नाटे मे आ गये। वह आदमी साधारण बातचीत मे कभी विज्ञान कहने लगता है, कभो वेद की व्याख्या करता है, कभी फ़ारसी की शेरे उडाने लगता है। विज्ञान, वेद और फारसी मे अपना कुछ दख़ल न होने के

कारण हमारी भक्ति उस पर उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। यहाँ तक कि हमारे थियासफिस्ट मित्र के मन में दृढ़ विश्वास हो गया कि उस नवपरिचित का किसी अलौकिक व्यापार के साथ अवश्य कुछ सम्बन्ध है। वह अलौकिक व्यापार कोई अपूर्व मैग्नेटिज़्म अथवा दैवशक्ति, अथवा सूक्ष्म शरीर या इसी तरह का कुछ-न-कुछ है। वे इस असाधारण पुरुष की हर एक साधारण बात को भी भक्ति-विह्वल मुग्धभाव से सुन रहे थे और चुपके से नोट करते जा रहे थे। मुझे जान पड़ा कि वह असाधारण पुरुष भी मेरे मित्र के भाव को समझ गया था और उसके लिए प्रसन्न भी हुआ था।

गाड़ी आकर जंक्शन में ठहरी। हम लोग दूसरी गाड़ी की अपेक्षा से वेटिंग-रूम में जाकर जमा हुए। रास्ते में एंजन का कोई पुर्ज़ा बिगड़ जाने के कारण सुन पड़ा कि गाड़ी बहुत देर में आवेगी। मैं टेबिल के ऊपर बिछौना बिछाकर सोने की तैयारी कर रहा था, इसी समय उस असाधारण व्यक्ति ने निम्नलिखित वृत्तान्त वर्णन करना शुरू कर दिया—

राज्य-सञ्चालन के सम्बन्ध में दो-एक बातों में मत-भेद होने के कारण मैं रियासत जूनागढ़ का काम छोड़कर जब दक्खिन-हैदराबाद में निज़ाम के यहाँ नौकर हो गया तब मुझे कम उमर का मज़बूत आदमी देखकर पहले ही भरीच में रुई का महसूल वसूल करने की नौकरी दी गई।

भरीच बहुत अच्छी रमणीय जगह है। निर्जन पहाड़ के नीचे भारी जङ्गल के भीतर शुस्ता नदी (इसका संस्कृत नाम स्वच्छतोया है) पथरीले मार्ग मे निपुण नर्तकी की तरह पग-पग पर टेढ़ी-मेढ़ी होकर तेज़ी से बहती हुई नाच रही सी जान पड़ती है। ठीक उसी नदी के किनारे पहाड़ के नीचे पत्थर के १५०० सीढ़ीवाले घाट के ऊपर एक सङ्गमरमर का महल अकेला खडा हुआ है। उसके पास कही कोई आदमी नहीं रहता। भरीच का रुई का बाजार और गाँव यहाँ से दूर पर है।

ढाई सौ वर्ष के लगभग हुए होंगे, जब दूसरे शाह महमूद ने अपने भोग-विलास के लिए वह महल ऐसे निर्जन स्थान मे बनवाया था। उस समय इस महल के हम्माम मे फुहारे से गुलाबजल बरसा करता था और उसी शीतल एकान्त स्थान मे सङ्गमरमर की चिकिनी शिलाओं के ऊपर बैठकर कोमल नग्न पदपल्लवो को जलाशय के निर्मल जल के ऊपर फैलाकर फ़ारिस की जवान बेगमे नहाने के पहले बाल खोलकर, सितार गोद मे रक्खे, गज़ले गाया करती थीं।

इस समय न तो अब वे फुहारे छूटते हैं और न वह गाना होता है। सङ्गमरमर के फ़र्श पर वे सुन्दर चरण भी नहीं पड़ते। इस समय वह मुझ ऐसे निर्जनवास-पीड़ित सङ्गीहीन महसूल-कलेक्टरो का अतिबृहत् और अतिशून्य निवासस्थान हो रहा है। किन्तु आफ़िस के बुड्ढे कर्मचारी करीम ख़ाँ ने मुझको बार-बार मना कर दिया कि मैं उस महल मे न रहूँ।

उसने कहा कि न मानूँ तो दिन को चाहे रहूँ, किन्तु रात को कभी भूलकर भी न रहूँ। मैंने हँसकर उसकी बात को उड़ा दिया। नौकरों ने कहा, वे शाम तक काम करेंगे, किन्तु रात को उस घर मे नहीं रहेगे। वह घर ऐसा बदनाम था कि रात को चोर भी उसमे जाने का साहस न कर सकता था।

पहले पहल आने पर इस छोड़े हुए पत्थर के महल की निर्जनता मानों एक भयङ्कर भाव की तरह मेरी छाती पर बोझ सी रक्खी रहती थी। जहाँ तक होता था, मैं बाहर ही रहता था और रात को थका हुआ आकर लेट रहता था।

किन्तु एक सप्ताह भी नहीं बीता होगा कि एक अपूर्व नशा मुझ पर आक्रमण करने लगा। अपनी उस अवस्था का वर्णन करना भी कठिन है और उस पर लोगों को विश्वास दिलाना भी कठिन है। वह महल एक सजीव पदार्थ की तरह मुझे मानों अपने भीतर के मोह रस से धीरे-धीरे जीर्ण करने लगा।

जान पड़ता है, उस घर में पैर रखते ही इस प्रक्रिया का आरम्भ हो गया था। किन्तु मैंने सचेत अवस्था मे जिस दिन इस भाव का अनुभव किया उस दिन की बाते स्पष्ट रूप से मुझे याद हैं।

उन दिनों गर्मियों की ऋतु का आरम्भ था—बाज़ार उतना चलता न था। मेरे हाथ मे कुछ काम न था। सूर्य्य अस्त होने के कुछ पहले मैं उसी नदी के किनारे घाट के नीचे एक आराम-कुर्सी डाले बैठा हुआ था। उस समय शुस्ता का पाट

बहुत कम रह गया था। दूसरे किनारे पर अनेक बालू के कगारे तीसरे पहर के सूर्य की आभा पडने से रङ्गीन हो रहे थे। इस किनारे घाट की सीढियों की जड़ मे, स्वच्छ उथले जल मे, किरणें झिलमिला रही थीं। उस दिन हवा का लेश भी न था। पास के पहाड़ मे उगे वन-तुलसी, पोदीना और सौंफ़ के जङ्गल से एक घनी सुगन्ध उठकर आकाश मे व्याप्त हो रही थी।

सूर्य धीरे-धीरे पहाड़ के शिखर की आड़ मे अदृश्य हो गये। उसी दम दिन की नाट्यशाला के ऊपर एक लम्बी छाया का ड्रापसीन पड़ गया। यहाँ पर्वत की आड़ रहने से सूर्यास्त के समय प्रकाश और छाया का सम्मिलन अधिक देर तक नहीं रहता। घोड़े पर चढ़कर टहल आने के लिए उठने को कर रहा था, इसी समय सीढ़ियों पर पैरों की आहट सुन पड़ी। पीछे फिरकर देखा—कोई न था।

कानो का भ्रम समझकर फिर बैठते ही एकदम अनेक पैरो की आहट सुन पडी—जैसे बहुत लोग दौड़ते हुए मेरी ओर आ रहे हैं। किञ्चित् भय के साथ एक अद्भुत रोमाञ्च से मेरा शरीर व्याप्त हो गया। यद्यपि मेरे सामने कोई साकार मनुष्य न था तो भी मुझे स्पष्ट प्रत्यक्ष के समान जान पड़ने लगा कि इस ग्रीष्म ऋतु के सायङ्काल मे बहुत सी प्रमोदचञ्चल स्त्रियाँ शुस्ता के जल मे स्नान करने के लिए उतर रही हैं। यद्यपि इस सन्ध्याकाल मे, पहाड़ के किनारे के सन्नाटे मे, नदी-

तट पर के निर्जन महल मे कहीं कुछ भी शब्द न था तो भी मानो मुझे स्पष्ट सुन पड़ा कि फुहारे की सैकड़ों धाराओं के समान कौतुकपूर्ण हास्य करती हुई एक के पीछे एक बहुत सी स्त्रियाँ स्नान करने के लिए मेरे पास से निकल गईं। मानो वे मुझसे शरमाईं नहीं। वे जैसे मेरे लिए अदृश्य हैं, वैसे ही मैं भी मानों उनके लिए अदृश्य हूँ। नदी पहले ही की तरह स्थिर थी। किन्तु मुझे स्पष्ट जान पड़ा कि शुस्ता का उथला जल-प्रवाह अनेक आभूषण-मण्डित हाथो के द्वारा चञ्चल हो उठा है। वे स्त्रियाँ हँस-हँसकर परस्पर जल उलच रही हैं और तैरनेवालियों के पैरो की थपेड़ से जल-बिन्दु मोती के समान उछल-उछलकर चमकते देख पड़ते हैं।

मेरे हृदय मे एक प्रकार की धड़कन होने लगी। मै ठीक नहीं कह सकता कि वह उत्तेजना भय की थी या कौतूहल की। बड़ी इच्छा हुई कि अच्छी तरह देखूँ, पर सामने देखने की कोई चीज़ नही थी। जान पड़ा, अच्छी तरह कान लगाकर सुनने से उनकी सब बातें स्पष्ट सुनी जा सकती हैं। किन्तु उस तरह कान लगाकर सुनने से झींगुरो की झनकार के सिवा और कुछ नहीं सुन पड़ा। जान पड़ा, ढाई सौ वर्ष पहले की कृष्णवर्ण यवनिका ठीक मेरे सामने पड़ी हुई है—डरते-डरते मैं बीच-बीच मे एक किनारा उठाकर भीतर की ओर देखता हूँ—वहाँ औरतों की बड़ी भारी सभा लगी हुई है, लेकिन अन्धकार मे कुछ स्पष्ट नहीं देख पड़ता।

एकाएक सन्नाटे को तोड़कर ज़ोर से हवा का एक झोंका आया। शुस्ता का स्थिर जल देखते ही देखते परी के केश-पाश की तरह संकुचित हो उठा और सन्ध्या की छाया से आच्छन्न वनभूमि दम भर में एक साथ ही मर्मर-ध्वनि करके मानो किसी दुःस्वप्न को देखते-देखते जाग पड़ी। चाहे स्वप्न कहो, चाहे सत्य कहो, ढाई सौ वर्ष के अतीत काल से प्रतिफलित होकर मेरे सामने जो एक अदृश्य मरीचिका अवतीर्ण हुई थी वह दम भर में अदृश्य हो गई। जो मायामयी रमणियाँ मेरे पास से देह-हीन द्रुत गति से शब्द-हीन उच्च हास्य करती हुई शुस्ता के जल में उतरी थीं वे भीगे कपड़ों से जल बहाती हुई मेरे पास से ऊपर उठकर नहीं गईं। हवा जैसे गन्ध को उड़ा ले जाती है वैसे ही वे उस हवा के झोंके से मानो उड़कर चली गईं।

तब मुझे बड़ी आशङ्का हुई कि शायद एकान्त में अकेले पाकर कविता देवी मेरे मस्तिष्क में घुस आई हैं। मैं बेचारा रुई का महसूल वसूल करके किसी तरह अपना पेट भरता हूँ, सर्वनाशिनी कविता शायद मेरा सर्वनाश करने के लिए उद्यत है। मैंने अपने मन में कहा, आज अच्छी तरह भोजन करना चाहिए। पेट ख़ाली रहने पर ही सब प्रकार के दुरारोग्य रोग आकर घेर लेते हैं। मैंने महराज को बुलाकर कहा, आज खीर, हलवा और पूरी बनाओ।

दूसरे दिन सबेरे उल्लिखित व्यापार बहुत ही हास्य-जनक जान पड़ने लगा। प्रसन्नचित्त से साहबी 'सोला' टोपी पहन-

कर अपने हाथ से टमटम हाँककर मैं जाँच करने के काम पर गया। उस दिन त्रैमासिक रिपोर्ट लिखनी थी। इसलिए देर मे डेरे पर आने का ख़याल था। किन्तु शाम होने के पहले ही मानो कोई मुझे उस महल की ओर चलने के लिए घसीटने लगा। कौन घसीटने लगा, सो मैं बता नही सकता। किन्तु यह जान पड़ने लगा, अब देर करना ठोक नही है। जान पड़ा, वे सब मेरी प्रतीक्षा मे बैठो हुई हैं। रिपोर्ट को वैसे ही छोड़कर, टोपी सिर पर रखकर, उस सन्ध्या की आभा से धूसर और घने पेड़ो से परिपूर्ण शून्य मार्ग मे टमटम दौड़ाता हुआ मैं उसी महल की ओर चला।

सीढियों के ऊपर पहुँचते ही उस महल का सामने का हाल बहुत बड़ा था। इसमे तीन बड़े-बड़ ऊँचे खम्भे थे और उनमे बहुत सी कारीगरियों से पूर्ण तीन फाटकनुमा दर बने हुए थे। उनके ऊपर बडी भारी छत थी। यह सूनसान हाल सन्नाटे से भरा रहता था। उस दिन उस समय भी वहाँ रोशनी नहो की गई थी। दरवाज़ा ठेलकर उस बड़े महल के भीतर जैसे ही मैंने प्रवेश किया वैसे ही जान पड़ा कि घर के भीतर भारी घबराहट मच गई। मानों एकाएक सभा भङ्ग करके चारों ओर की खिड़कियों, दरवाज़ों और बरामदों से सब इधर-उधर भाग गईं। मैं कही कुछ न देखकर सन्नाटे मे जैसे का तैसा खड़ा रह गया। शरीर मे एक प्रकार के आवेश से रोमाञ्च हो आया। मानों बहुत दिनो की लुप्तावशिष्ट

अतर की मृदु महक नासिका के भीतर आकर प्रवेश करने लगी। मैं उसी दीपहीन, जनहीन बड़े घर की प्राचीन पत्थर के खम्भो की क़तार के बीच खडा हुआ था। मुझे जैसे सुन पड़ा कि फुहारा छूट रहा है और उससे निकला हुआ जल झरझर शब्द के साथ सङ्गमरमर के फ़र्श पर आकर गिर रहा है। सितार भी बज रहा है। कभी सोने के गहनो की झनक, कभी घुँघरुओ की खनक, कभी घण्टा बजने का शब्द, कभी बहुत दूर पर शहनाई का मीठा सुर, कभी हवा से हिल रहे झाड़ो के शीशे परस्पर टकराने का शब्द, कभी पालतू बुलबुलो की आवाज और कभी बाग़ मे बोल रहे पालतू सारसो का शब्द सुनकर मैं पागल सा हो उठा।

मेरे मन मे एक प्रकार का मोह उपस्थित हुआ। जान पड़ा, यह अस्पृश्य, अगम्य, अवास्तव व्यापार ही जगत् मे एक-मात्र सत्य है, और सब मिथ्या मरीचिका है। मैं मैं हूँ—अर्थात् अमुक, अमुक का वडा लड़का, रुई का महसूल वसूल करके महीने मे साढे चार सौ रुपये तनख़्वाह के पाता हूँ, मैं सोला टोपी पहनकर टमटम हाँकता हुआ दफ्तर जाता हूँ—यह सब मुझे ऐसी अद्भुत अमूलक मिथ्या हँसी की बात जान पड़ने लगी कि शायद मैं उस विशाल नि:स्तब्ध अन्धकार-पूर्ण हॉल के बीच खड़े हो हा हा हा हा करके हँस उठा।

उसी समय मेरा नौकर लैम्प जलाकर मेरे पास ले आया। मालूम नही, उसने मुझे पागल समझा या नही। किन्तु उसी

घड़ी मुझे स्मरण हो आया कि मैं सचमुच अमुक का ज्येष्ठ पुत्र अमुक हूँ। यह भी मैंने अपने मन मे सोच लिया कि इस बात को तो हमारे महाकवि और कविवर ही कह सकते हैं कि जगत् के भीतर अथवा बाहर कहीं मूर्त्तिहीन फुहारा नित्य छूटा करता है या नहीं, और किसी अदृश्य अंगुलि के आघात से किसी मायातन्त्री मे अनन्त रागिनी बजा करती है या नहीं; किन्तु यह बात बिलकुल सच है कि भरीच के बाज़ार मे रुई का महसूल वसूल करके मैं महीने मे साढ़े चार सौ रुपये की तनख़्वाह पाता हूँ। तब फिर अपने पहले के मोह को स्मरण करके लैम्प से प्रकाशित कैम्प टेबिल के पास अख़बार हाथ मे लिये बैठा हुआ मैं कौतुक के साथ हँसने लगा।

अख़बार पढ़कर और खीर-पूरी-मोहनभोग छककर मैं एक कोने मे बुझा हुआ लैम्प रखकर सो रहा। मेरे सामने की खुली हुई खिड़की के भीतर नज़र डालकर अन्धकारमय वन से घिरे हुए अराली पहाड़ के ऊपर एक अति उज्ज्वल नक्षत्र लाखों योजन की दूरी से खाट पर पड़े हुए मुझ महसूल-कलेक्टर की ओर ताक रहा था। इससे विस्मय और कौतुक का अनुभव करते-करते न जाने मै किस समय सो गया। कब तक सोता रहा, यह भी नहीं मालूम। सहसा एकाएक काँपकर मैं जाग उठा। घर मे कोई शब्द अवश्य हुआ था, किन्तु कोई आदमी न देख पड़ा। अन्धकारपूर्ण पर्वत के ऊपर से एकटक ताकने-वाला वह नक्षत्र अस्त हो चुका था और कृष्णपक्ष के क्षीण

चन्द्रमा का प्रकाश अनधिकारसङ्कुचित म्लान भाव से मेरे शयन-गृह के भीतर खिड़की के द्वारा घुस चुका था।

कोई भी आदमी नहीं देख पड़ा, तब भी मुझे स्पष्ट जान पड़ा, कोई मुझे धीरे-धीरे ठेल रहा है। मेरे जागते ही उसने कुछ न कहकर मानो केवल अपनी अँगूठियों से अलंकृत अस्थि-सार पाँच उँगलियो के इशारे से मुझे अत्यन्त सावधानी के साथ अपने साथ आने के लिए आज्ञा दी।

मैं बहुत ही चुपके-चुपके उठा। यद्यपि उस सैकड़ो कोठो और कमरो से परिपूर्ण, प्रकाण्डशून्यता से भरे, निद्रित ध्वनि और सचेत प्रतिध्वनि से व्याप्त बड़े महल मे मेरे सिवा कोई आदमी न था, तथापि पग-पग पर यह भय होने लगा कि मेरे पैरो की आहट से कोई जाग न पड़े। महल के अधिकाश कमरे बन्द पड़े रहते थे और उन कमरों के भीतर मैं कभी गया भी न था।

उस रात को साँस रोके चुपचाप पैर रखता हुआ मैं उस अदृश्य आह्वानकारिणी के पीछे-पीछे कहाँ जा रहा था, सो आज मैं स्पष्ट करके बतला नहीं सकता। कितने ही तङ्ग अँधेरे रास्ते, कितने ही लम्बे बरामदे, कितने ही गम्भीर निःस्तब्ध सुबृहत् सभा-गृह और कितनी ही बन्द ड्योढ़ियाँ लाँघकर मैं उसके पीछे जा रहा था।

मेरी अदृश्य दूती यद्यपि मुझे आँखों से नहीं देख पड़ी तथापि उसकी मूर्त्ति मेरे मन के अगोचर न थी। वह अरब की

औरत थी। ढीली आस्तोन के कुरते के भीतर माने सङ्गमरमर के गढ़े हुए गोल कठिन हाथ देख पड़ते थे। टोपी के किनारे से मुँह के ऊपर एक बुर्क़ा पड़ा हुआ था। कमरबन्द मे एक कटार लटक रही थी।

मुझे जान पड़ा, आरव्योपन्यास की एकाधिक सहस्र रात्रियों में से एक रात्रि आज उपन्यासलोक से उड़कर यहाँ आ गई है। मैं मानों अँधेरी आधी रात मे, नींद में अचेत बग़दाद शहर की प्रकाशहीन तङ्ग गलियों मे किसी सङ्कट-संकुल अभिसार की यात्रा कर रहा हूँ।

अन्त को मेरी दूती एक नीले रङ्ग के पर्दे के सामने जाकर सहसा खडो हो गई और मानों उँगली के द्वारा मुझसे उधर को इशारा किया। सामने कुछ भी न था, किन्तु भय के मारे मेरी छाती का ख़ून जैसे जम गया। मैंने अनुभव किया कि उस पर्दे के सामने ज़मीन पर कमख़ाब की पोशाक पहने एक भयानक हबशी खोजा खुली तलवार पास रक्खे दोनों पैर फैलाये ऊँघ रहा है। दूती ने जल्दी से उसके पैरो को लाँघकर पर्दे का एक सिरा खींच लिया।

भीतर एक फ़ारसी गलीचे से सुशोभित फ़र्श का कुछ अंश देख पड़ा। तख़्त के ऊपर कोई बैठा था, किन्तु यह न देख पड़ा कि वह कौन है। केवल जाफ़रानी रङ्ग के ढीले पायजामे के नीचे ज़रतारी की जूती पहने दो छोटे से सुन्दर चरण गुलाबी मख़मल के आसन पर अलस भाव से रक्खे हुए देख

पड़े। फ़र्श पर एक किनारे, एक नीले रङ्ग के बिल्लौरी पात्र में, कुछ सेव, नाशपाती, सन्तरे आदि फल और बहुत से अंगूरों के गुच्छे सजाये हुए रक्खे थे और उसके पास ही दो छोटे प्याले और एक अर्ग़वानी रङ्ग की शराब की बोतल मानो अतिथि के लिए अपेक्षा कर रही है। एक तरह का नशा ला देनेवाली महक से परिपूर्ण अपूर्व धूप के धुएँ ने भीतर से आकर मुझे विह्वल बना दिया।

मैं धड़कते हुए कलेजे को हाथों से थामकर खोजा के फैले हुए पैरों को ज्योंही लाँघने चला त्योंही वह चौंककर जाग पड़ा—उसकी गोद पर रक्खी हुई तलवार पत्थर के फ़र्श पर झनकार के साथ गिर पड़ी।

सहसा एक विकट चीत्कार सुनकर मैं भी चौंक पड़ा। देखा, उसी अपनी खटिया के ऊपर मैं बैठा हुआ हूँ—शरीर से पसीना छूट रहा है। सवेरे के प्रकाश से कृष्णपक्ष का चन्द्र-खण्ड, जागने से क्लेश को प्राप्त रोगी की तरह, फीका पड़ गया है। और पागल मेहर अली, नित्य की प्रथा के अनुसार, तड़के जनशून्य मार्ग में "अलग रहो," "हट जाओ" कहकर चिल्लाता हुआ चला जा रहा है।

इस प्रकार मेरे आरव्योपन्यास की एक रात अकस्मात् समाप्त हो गई—किन्तु अभी और एक हज़ार रातें बाक़ी हैं।

मेरे दिन के साथ रात का एक भारी विरोध ठन गया। जागने की थकन से शिथिल शरीर लेकर दिन को काम करने

जाता था, और उस समय शून्य-स्वप्नमयी मोहमयी मायाविनी रात को बहुत भयानक समझता था। किन्तु फिर शाम के बाद दिन के काम-काज मे जकड़े हुए अस्तित्व को बहुत ही तुच्छ मिथ्या और हास्यकर समझने लगता था।

सन्ध्या के बाद मैं एक नशे के जाल मे विह्वल भाव से फँस जाता था। सैकड़ों वर्ष पहले के किसी एक अलिखित इतिहास के अन्तर्गत और एक अपूर्व व्यक्ति हो उठता था। तब विलायती पोशाक मुझे नहीं रुचती थी। तब मैं कल्पना के द्वारा मानों सिर पर लाल मख़मल की टोपी देकर ढीला पायजामा, फूलदार काबा और रेशमी लम्बा चोग़ा पहनकर रूमाल में अतर लगाकर ख़ूब सज-धज करता था और सिगरेट त्यागकर ख़ुशबूदार तमाखू का तवा लेकर ऊँची गद्दीवाले एक बड़े मोढ़े पर बैठता था।

उसके बाद अन्धकार जितना ही घना होता था उतना ही एक अद्‌भुत व्यापार होने लगता था। उसका ठीक-ठीक वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। मानों किसी सुन्दर उपन्यास के कुछ टुकड़े, वसन्त की एकाएक चलनेवाली हवा के द्वारा, उस विचित्र महल के विचित्र कमरो मे उड़े उड़े फिरते थे। कुछ दूर तक वे पाये जाते थे, उसके बाद फिर उनका अन्त न देख पड़ता था। मैं भी उन उडकर घूम रहे विच्छिन्न अंशो का अनुसरण करता हुआ हर एक कमरे मे जैसे घूमा-घूमा फिरता था।

इस खण्डस्वप्न के आवर्त्त के भीतर—इसी हिना की महक, सितार के शब्द और सुगन्धित जल-कणो से मिले हुए पवन के झोकों के बीच—एक नायिका को दम-दम भर पर बिजली की चमक के समान देख पाता था। उसका जाफ़रानी रङ्ग का पायजामा, उसके गोरे गुलाबी कोमल पैरो मे कामदार जूती, वक्ष:स्थल मे फूलदार कसी हुई चोली, सिर पर लाल टोपी और उस टोपी से लटक रही सोने के तारों की झालर बहुत ही सुहावनी जान पडती थी।

उसने मुझे पागल बना दिया था। मैं उसी के फ़िराक़ मे हर रात को नींद के पाताल-राज्य मे स्वप्न के जटिल मार्गों से परिपूर्ण मायापुरी के बीच गली-गली और कमरे-कमरे मे घूमता-फिरता था।

कभी कभी सन्ध्या के समय बड़े आईने के दोनो ओर दो लैम्प जलाकर बड़े यत्न से शाहज़ादो के समान सजधज करता था। इसी समय अकस्मात् देख पडता था, आईने मे मेरे प्रतिबिम्ब के पास पल भर के लिए मानो उसी ईरानी सुन्दरी की परछाहीं आकर पड़ती थी;—दम भर मे गर्दन टेढ़ी करके, अपनी घनकृष्ण चौड़ी आँखों की पुतलियो के द्वारा सुगभीर आवेग-तीव्र-वेदनापूर्ण आग्रह के साथ कटाक्षपात करके, सरस सुन्दर-रूप के कुँदरू ऐसे अधरो मे एक अस्फुट भाषा का आभास मात्र देकर, लघु-ललित चञ्चलता से अपनी यौवन-पुष्पित देहलता को द्रुत वेग से ऊपर की ओर आवर्त्तित करके, वेदना,

वासना और विभ्रम की—हास्य-कटाक्ष और आभूषणों की चमक की—चिनगारियाँ बरसाकर वह उस शीशे में ही गायब हो जाती थी। पहाड़ी फूलों की सारी सुगन्ध लूटकर आई हुई हवा का एक झोंका आकर उन दोनों लैम्पों को बुझा देता था। मैं सजधज करना छोड़कर वहाँ पड़ी हुई शय्या पर लेट रहता था। मेरे शरीर में रोमाञ्च हो आता था और मैं आँखें बन्द कर लेता था। मेरे चारों ओर उसी हवा के बीच में—उस पहाड़ी फूलों की महक के बीच में—जैसे अनेक प्यार अनेक चुम्बन, अनेक कोमल कर-स्पर्श उस निभृत अन्धकार को व्याप्त करके इधर-उधर घूमते-फिरते थे। कानों के पास मानों अनेक मधुर गुञ्जन सुन पड़ते थे, मेरे मस्तक पर मानो बहुत सी सुगन्धित साँसें आकर पड़ती थीं और मेरे कपोल को मानों एक मृदुसौरभ-रमणीय दुपट्टा वारम्बार उड़-उड़कर स्पर्श कर जाता था। धीरे-धीरे मानों एक मोहिनी मन्त्र जाननेवाली नागिन अपने मादक-बन्धन से मेरी सब इन्द्रियों को जकड़ लेती थी। मैं लम्बी साँस लेकर शिथिल शरीर को पलँग पर डालकर निद्रा से अभिभूत हो पड़ता था।

एक दिन तीसरे पहर मैंने घोड़े पर चढ़कर घूमने जाने का इरादा किया, किन्तु न मालूम कौन मुझे वैसा करने के लिए मानों मना करने लगा। मगर उस दिन मैंने उस निषेध को नहीं माना। एक लकड़ी पर मेरा साहबी कोट और टोपी टँगी हुई थी। उसे उतारकर पहनने का उपक्रम कर रहा था। इसी

समय शुस्ता नदी की बालू और अराली पहाड़ के ऊपर के सूखे पत्तों की पताका फहराकर अचानक एक बौंडर मेरे उस कोट और टोपी को मानों मेरे हाथ से छीनकर उड़ा ले गया। साथ ही मानों एक बहुत मीठी हँसी उसी बौंडर के साथ घूमते-घूमते—कौतुक के हर एक पर्दे में आघात करते-करते—उच्च से उच्चतर सप्तक मे चढ़कर सूर्यास्त के लोक के पास जाकर लीन हो गई।

उस दिन फिर घोड़े की सवारी और सैर रह गई। मैंने उसी दिन से वह कोट और हैट पहनना बिलकुल छोड दिया।

फिर उसी दिन आधी रात को मैं एकाएक पलॅग पर उठकर बैठ गया। जान पड़ा, जैसे कोई फूल-फूलकर मर्मभेदी दुःख से रो रहा है। जैसे मेरी खाट के नीचे, फ़र्श के नीचे, उस बड़े महल की पत्थर की दीवार के तले बनी हुई किसी अन्धकार-पूर्ण क़ब्र के भीतर से कोई रो-रोकर कह रहा है—तुम मुझे यहाॅ से निकालकर ले चलो—कठिन माया, गहरी नीद, निष्फल स्वप्न के सब द्वारों को तोड़-ताडकर, घोड़े पर चढ़ाकर, छाती से लगाकर, वन के भीतर होकर, पहाड़ के ऊपर से मुझे अपने सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित घर के भीतर ले जाओ! मेरा उद्धार करो।

मैं कौन हूॅ! मैं किस तरह उद्धार करूॅ! मैं इस घूम रहे परिवर्त्तमान स्वप्न-प्रवाह के भीतर से किस डूब रही कामना-सुन्दरी को किनारे खींच ले जाऊँ! तुम कब थी और कहाॅ थी! हे दिव्यरूपिणी! तुम किस शीतल झरने के किनारे,

खजूर के पेड़ो के कुञ्ज की छाया मे, किस गृहहीन अरब देश की रमणी के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं! तुमको कौन लुटेरा, वनलता से पुष्पकली की तरह, माता की गोद से अलग करके बिजली की तरह भागनेवाले घोड़े पर चढ़ाकर मरुभूमि लाँघकर किस राजपुरी के दासियों के बाज़ार मे बेचने के लिए ले गया था! वहाँ किस बादशाह के नौकर ने तुम्हारे नवविकसित सलज्ज कातर यौवन की शोभा निरखकर अशर्फ़ियों के मोल तुमको ख़रीदा था और उपहार के रूप में, पालकी पर चढ़ाकर, अपने मालिक की सेवा मे पहुँचा आया था! वहाँ का—बादशाह के अन्तःपुर का—क्या और कैसा इतिहास है। वहाँ सारङ्गी के सङ्गीत, घुँघरुओ की झनकार, शीराज़ी शराब के स्वाद और कटाक्षो की चोट के सिवा कुछ न होगा। एक ओर असीम ऐश्वर्य और दूसरी ओर अनन्त कारागार-वास रहा होगा। दोनों ओर दो बाँदियाँ खड़ी जड़ाऊ आभूषणों की बिजली चमका-चमकाकर चवँर डुलाती होंगी, ख़ुद शाहनशाह बादशाह तुम्हे मनाने के लिए तुम्हारे मणि-मुक्तामण्डित कोमल चरणों पर बार-बार सिर रखते होंगे। बाहर के द्वार पर यमदूत के समान हबशी, देवदूत का सा पहनावा पहने, खुली तलवार हाथ में लिये पहरा दिया करता होगा। इसके बाद उस रक्त-कलुषित ईर्ष्याफेनिल षड्-यन्त्रसंकुल भीषण-उज्ज्वल ऐश्वर्य के प्रवाह मे बहते-बहते तुम, मरुभूमि की पुष्पमञ्जरी, किस निष्ठुर मृत्यु के मुख मे चली गई अथवा किस निष्ठुरतर महिमा-तट पर फेंक दी गई हो?

इसी समय एकाएक वही पगला मेहर अली चिल्ला उठा—अलग रहो, हटे रहो, सब झूठ है, सब झूठ है। आँख खोलकर देखा, सबेरा हो गया था।

चपरासी ने सबेरे की डाक लाकर मुझको दी और महाराज ने आकर पूछा—आज क्या खाने को बनेगा?

मैने अपने मन मे कहा—बस, अब इस घर मे नहीं रहूँगा। उसी दिन अपना असबाव उठाकर आफ़िस के घर में ही जाकर डेरा डाला। आफ़िस का बुड्ढा नौकर अमीर ख़ाँ मुझे देखकर कुछ मुसकाया। मैं उसके मुसकराने से खीझकर उसे कुछ उत्तर न देकर काम करने चला गया।

जैसे-जैसे सायङ्काल निकट आने लगा वैसे ही मैं अन्यमनस्क होने लगा। जान पड़ने लगा, मानो इस समय कहीं जाना है। रुई के महसूल का हिसाब जाँचने का काम बहुत ही अनावश्यक जान पड़ने लगा—निज़ाम की निज़ामत भी मुझे कुछ बड़ी बात न जान पड़ी। जो कुछ वर्त्तमान है, जो कुछ मेरे चारो ओर चलता-फिरता है, काम करता है वह सब मुझे अत्यन्त दीन, अर्थहीन तुच्छ जान पडने लगा।

मैं कलम फेककर, बड़ा रजिस्टर धम से बन्द करके उसी समय टमटम पर चढकर वहाँ से चल दिया। देखा, टमटम ठीक गोधूलि के समय आप ही उस पत्थर के महल के द्वार के पास आकर रुक गई। मैं जल्दी से सीढ़ियाँ चढ़कर यथास्थान पहुँच गया।

आज घर भर में सन्नाटा छाया हुआ था। अँधेरा घर मानों नाराज़ होकर मुह फुलाये हुए था। पश्चात्ताप से मेरा हृदय परिपूर्ण हो उठा। किन्तु किसको वह अपना पश्चात्ताप जताता, किसको मनाता और किससे माफ़ी माँगता ? घर भर मे सन्नाटा छाया हुआ था। मैं शून्य हृदय लिये उस अँधेरे घर मे इधर से उधर घूमने लगा। जी चाहने लगा कि कोई बाजा बजाकर किसी के उद्देश से इस आशय का गान गाऊँ कि हे अग्नि, जिस पतङ्ग ने तुमको छोड़कर भागने की चेष्टा की थी वह फिर मरने के लिए आया है ! अबकी उसे क्षमा करो, उसके दोनों पर जला डालो—उसे भस्म कर दो !

एकाएक ऊपर से मेरे मस्तक पर किसी की आँखों के आँसुओ के समान दो बूँद आकर गिर पड़े। उस दिन अराली पहाड की चोटी पर ख़ूब बादल घिरे हुए थे। अँधेरा जङ्गल और शुस्ता का स्याही के समान काले रङ्ग का दिखाई पड़ रहा पानी दोनों, किसी भीषण प्रतीक्षा मे स्थिर थे। सहसा जल, स्थल और आकाश जैसे काँप उठे और अकस्मात् बिजली की चमक के साथ आँधी, ज़ंजीर तुड़ाकर भागे हुए सिड़ी की तरह, पथहीन दूरवर्त्ती जङ्गल के भीतर से आर्त्तनाद का चीत्कार करती हुई उसी मकान की ओर आई। उस महल के सूने कमरो के किवाड़े भडाभड होने लगे। मानों कोई छाती पीट-पीटकर विलाप कर रहा हो।

आज मेरे भी नौकर दफ़्तरवाले मकान ही मे थे। इस महल मे लैम्प और उसको जलानेवाला कोई न था। उस बादलो

से घिरी हुई अमावस की रात को कसौटी के पत्थर से भी काले घने अन्धकार के बीच मैं स्पष्ट अनुभव करने लगा कि एक रमणी पलँग के नीचे ग़लीचे पर पट पड़ी हुई अपने बालों को नोच रही है, उसके मस्तक से रुधिर बह रहा है। कभी वह शुष्क तीव्र अट्टहास करके हँस उठती है और कभी फूल-फूलकर रोती है—क़ीमती चोली फाड़कर दोनों हाथों से छाती पीटती है। खुले हुए किवाड़ों से हवा के झोंके भीतर आ रहे हैं और पानी की बौछारें भीतर आ-आकर उसके शरीर को भिगो रही हैं।

रात भर आँधी-पानी नहीं रुका और वह आवेश-राज्य का रोना-बिलखना भी बन्द नहीं हुआ। मैं निष्फल पश्चात्ताप के साथ अँधेरे मे एक कमरे से दूसरे कमरे मे घूमने लगा। कहीं भी कोई न था। किसे समझाता और मनाता? यह प्रचण्ड रूठना किसका है? यह अशान्त आक्षेप कहाँ से उठ रहा है?

इसी बीच मे पगला मेहर अली चिल्ला उठा—अलग रहो, हटे रहो, सब झूठ है, सब झूठ है!

मैंने देखा, तड़का हो आया है और मेहर अली इस घोर दुर्दिन मे भी, अपने नियम के अनुसार, उस महल के चारो ओर घूमकर वही सदा की 'सदा' लगा रहा है। एकाएक मुझे जान पड़ा, शायद मेहर अली भी किसी समय मेरी ही तरह इस महल के भीतर रह चुका है, अब पागल होकर बाहर निकलकर भी इस पाषाण राक्षस के मोह से आकृष्ट होकर नित्य सबेरे इसकी प्रदक्षिणा करने आता है।

मैं उसी दम, उसी वर्षा मे, पगले के पास दौड़ा गया और उससे पूछा—मेहर अली, क्या झूठ है ?

वह मेरी बात का कुछ उत्तर न देकर मुझे आगे से हटाकर—अजगर के मुँह के पास मोह के आवेश से घूम रहे पत्ती की तरह—चिल्लाता हुआ उस महल के चारों ओर घूमने लगा। केवल प्राणपण से अपने को सावधान करने के लिए बार-बार यह कहता जाता था कि अलग रहो, हटे रहो, सब झूठ है—सब झूठ है !

मैं उसी आँधी-पानी मे पागल की तरह आफ़िस जाकर करीम ख़ाँ से बोला—इसका क्या अर्थ है, मुझसे ख़ुलासा करके कहो।

वृद्ध करीम ख़ाँ ने जो कहा उसका सारांश यही था कि उक्त बादशाही महल मे एक समय अनेक अतृप्त वासना और अनेक उन्मत्त-सम्भोग की ज्वालाएँ उठा करती थीं। उन्हीं सब दिलों की जलन से—उन सब निष्फल कामनाओं के अभिशाप से—इस महल का हर एक पत्थर भूखा और प्यासा हो रहा है। सजीव मनुष्य को पाकर, लुब्ध पिशाच की तरह, उसे वह महल मानो लील लेना चाहता है। जो तीन रात तक इस महल मे रहा है वह फिर बाहर नहीं निकला। हाँ, केवल मेहर अली पागल होकर बाहर निकल आया है।

मैंने पूछा—अब मेरे उद्धार की क्या कोई राह नहीं है ?

वृद्ध ने कहा—केवल एक उपाय है, लेकिन वह बहुत कठिन है। सुनो, किन्तु वह उपाय बताने के पहले गुलबाग़

की एक ईरानी बाँदी का कुछ पुराना इतिहास कहना ज़रूरी जान पड़ता है। वैसा आश्चर्य और वैसी हृदयविदारक घटना जगत् में दूसरी नहीं हुई होगी।

❀ ❀ ❀

इसी समय कुलियों ने आकर ख़बर दी कि गाड़ी आ रही है। इतनी जल्दी? जल्दी के साथ बिछौने-बिस्तर वग़ैरह बाँधते-बाँधते गाड़ी आ गई। उस गाड़ी के भीतर फ़र्स्ट क्लास में एक सोकर तुरन्त उठा हुआ अँगरेज़, खिड़की के भीतर से सिर निकाले हुए, स्टेशन का नाम पढ़ने की चेष्टा कर रहा था। हमारे सहयात्री उक्त पुरुष को देखते ही "हल्लो" कहकर वह ख़ुशी से चिल्ला उठा। उस अँगरेज़ ने उक्त पुरुष को अपने पास बिठा लिया। हम लोग भी सेकिंड क्लास की गाड़ी पर सवार हुए। उक्त पुरुष का फिर पता नहीं लगा और इस क़िस्से का शेष अंश भी सुनने को नहीं मिला।

मैंने अपने थियासफ़िस्ट मित्र से कहा—वह आदमी हम लोगों को गूँगे के समान देखकर बेवक़ूफ़ बना गया है। यह क़िस्सा शुरू से आख़ीर तक बनाया हुआ है।

इस तर्क के कारण थियासफ़िस्ट मित्र के साथ जन्म भर के लिए मेरी खटपट हो गई।